खण्ड 2
यजुर्वेद एवम् अथर्ववेद

खण्ड दो का परिचय

यजुर्वेद एवं अथर्ववेद से सम्बन्धित इस खण्ड में विभिन्न प्रकार के वर्णन किए गए हैं। इस खण्ड का विषय बहुत व्यापक है। कम से कम आठ अध्यायों में या इकाइयों में इन्हीं शिक्षकों का अध्ययन किया जा सकता है। गद्यात्मको यजुः' अर्थात् गद्य में रचे गये मन्त्रों को यजुष् कहते हैं। निरूक्तकार यास्क 'यजुः' शब्द यज् धातु से निष्पन्न मानते हैं। इसमें यज्ञ सम्बन्धी प्रार्थनाए हैं। यजुर्वेद के दो मुख्य भाग हैं- 1. शुक्ल यजुर्वेद 2. कृष्ण यजुर्वेद। मन्त्र तथा ब्राह्मण का एकत्र मिश्रण होने के कारण ही 'कृष्ण यजुर्वेद' को कृष्ण कहा जाता है तथा मन्त्रों का विशुद्ध रूप होने के कारण ही 'शुक्त यजुर्वेद' को शुक्ल कहा जाता है । सहजता की दृष्टि से, पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए इतने व्यापक विषय को संक्षिप्त रूपमें ही यहाँ प्रस्तुत किया गया है। जिसका अध्ययन कर लेने से आपको अत्यन्त विस्तार पूर्वक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। इस खण्ड की प्रथम इकाई शिवसंकल्पसूक्त, और पुरुष सूक्त, उत्तरनारायण सूक्त, राष्ट्रगान आदि का वर्णन करती है।

अथर्ववेद में पारलौकिक फल-निष्पादक मन्त्रों के साथ-साथ लौकिक अथवा ऐहिक फल निष्पादक मन्त्रों का भी संग्रह है। अथर्ववेद में समस्याओं को दूर करने एवं सुखमय जीवन व्यतीत करने के उपायों का निर्देशन है, अतएव अन्य संहिताओं की अपेक्षा अथर्ववेद की लोकप्रियता सर्वाधिक रही है। इसके अध्ययन को महत्त्वपूर्ण माना गया है। दूसरी इकाई में अथर्ववेद के भूमि सूक्त के आधार पर पृथ्वी की वैदिक अवधारणा के विषय में विवेचना प्रस्तुत की गई है। तीसरी इकाई राष्ट्रभिवर्धनसूक्त, कृमिनाशनम् सूक्तों के प्रतिपाद्य और विशेषता का वर्णन करती है। इस खण्ड की अगली इकाई में काल,उच्छिष्ट और स्कम्भ सूक्तों की दार्शनिकता का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। सभी वर्णन अत्यन्त सरलता की दृष्टि से प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे बहुत व्यापक विषय का ज्ञान संक्षिप्त रूप में हो सके। सुधीजन इन सभी इकाइयों में बताये गए विषयों का अध्ययन करके सफल और से लाभान्वित होंगे। इस खण्ड में व्यक्तिगत जीवन से लेकर राष्ट्र के निर्माण में एक सफल नागरिक की क्या भूमिका हो सकती है, इस प्रकार के सन्देश हमें प्राप्त होते हैं। क्योंकि शिवसंकल्प सूक्त ,पुरुष सूक्त और इस इकाई के अन्य विषय भारतीय ज्ञान परम्परा के निचोड़ के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। आशा है आप इसके अध्ययन से अवश्य लाभ पाएंगे और इनकी व्याख्या भी करने में सक्षम हो सकेंगे।

इकाई 1 शिवसंकल्प सूक्त, पुरुष सूक्त, उत्तरनारायण सूक्त, राष्ट्रगान सूक्त

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 शिवसंकल्प सूक्त

1.3 पुरुष सूक्त

1.4 उत्तरनारायण सूक्त

1.5 राष्ट्रगान सूक्त

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

- शिव संकल्प सूक्त आधुनिक मनोविज्ञान के दर्शन किस प्रकार होते हैं? किस प्रकार इस सूक्त में विविध तरीकों से मन को शुभ संकल्पों से युक्त के करने लिए प्रार्थना की गई है? इस तथ्य को समझ पायेंगें।
- सृष्टि की उत्पत्ति की दृष्टि से,आध्यात्मिक तथा दार्शनिक दृष्टि से पुरुष सूक्त की समीक्षा कर पायेंगें।
- उत्तर नारायण सूक्त के आधार पर परम पुरुष का स्वरूप, उसकी प्राप्ति की विधि एवं परम पुरुष के ज्ञान का फल का विश्लेषण कर पायेंगें।
- राष्ट्रगान सूक्त के आधार पर जान पायेंगें कि एक आदर्श राष्ट्र को कैसे परिभाषित किया हैं? तथा एक सुसंगठित राष्ट्र में किस प्रकार के व्यक्तियों एवं व्यवस्थाओं की आवश्यक्ता है?

1.1 प्रस्तावना

वैदिक साहित्य में यजुर्वेद अपना विशिष्ट स्थान रखता है। मनुष्य जीवन के विकास की ज्ञान, कर्म और उपासना ये तीन सीढियाँ हैं। इनमें कर्म की सीढ़ी या कर्मकाण्ड का प्रतिपादन विशेषतः यजुर्वेद ही करता है। 'गद्यात्मको यजुः' अर्थात् गद्य में रचे गये मन्त्रों को यजुष् कहते हैं। निरुक्तकार यास्क 'यजुः' शब्द यज् धातु से निष्पन्न मानते हैं। इसमें यज्ञ सम्बन्धी प्रार्थनाएँ संकलित है। यजुर्वेद के दो मुख्य भाग है- 1.शुक्ल यजुर्वेद 2.कृष्ण यजुर्वेद। मन्त्र तथा ब्राह्मण

का एकत्र मिश्रण होने के कारण ही 'कृष्ण यजुर्वेद' को कृष्ण कहा जाता है तथा मन्त्रों का विशुद्ध एवं अमिश्रित रूप होने के कारण ही 'शुक्ल यजुर्वेद' को शुक्ल कहा जाता है। शुक्ल यजुर्वेद में केवल 'दर्शपौर्मासादि' अनुष्ठानों के लिए आवश्यक मन्त्रों का संकलन है। इसकी दो मुख्य शाखायें है- माध्यन्दिन एवं काण्व। इसकी संहिताओं को 'वाजसनेय' भी कहा गया है क्योंकि 'वाजसनि' के पुत्र याज्ञवल्क्य वाजसनेय इसके द्रष्टा थे। इसमें कुल 40 अध्याय हैं। कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ-साथ 'तन्त्रियोजक ब्राह्मणों' का भी सम्मिश्रण है। इसकी चार मुख्य शाखायें हैं- तैत्तिरीय, मैत्रायणी,कठ और कपिष्ठल।

हम इस इकाई में यजुर्वेद की चार मुख्य सूक्तों का अध्ययन करने जा रहें हैं - शिवसंकल्प सूक्त, पुरुष सूक्त, उत्तरनारायण सूक्त, राष्ट्रगान सूक्त। युजर्वेद के 34वें अध्याय के प्रारम्भिक 6 मन्त्रों को 'शिवसंकल्प—सूक्त' कहा जाता है। यहाँ शिव संकल्प से तात्पर्य शुभ संकल्प, श्रेष्ठ एवं कल्याणकारी संकल्प से है। इसमें प्रत्येक मन्त्र के अन्त में 'तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु' (मेरा मन शुभ विचारों से युक्त हो) यह सुभाषित दिया गया है। इस सूक्त में विविध तरीकों से मन को शुभ संकल्पों से भरने के लिए प्रार्थना की गई है। यजुर्वेद में सृष्टि (ब्रह्माण्ड) विद्या अथवा कॉस्मोलॉजी से सम्बद्ध एक विशिष्ट सूक्त है जो पुरुष सूक्त के रूप में विख्यात है। सृष्टि (ब्रह्माण्ड) विज्ञान अथवा कॉस्मोलॉजी, आधुनिक विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें सृष्टि के निर्माण एवं विकास से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। पुरुष सूक्त के अनुसार विश्व एक प्राकृतिक सृष्टि है। आध्यात्मिक तथा दार्शनिक दृष्टि से इस सूक्त का बड़ा महत्त्व है। पुरुष सूक्त के अनुसार से सूक्ष्म से स्थूल की ओर आना ही 'सृष्टि' है। इस सूक्त में विराट् पुरुष से जड़ चेतन पदार्थों की उत्पत्ति, निर्मिति तथा सर्जना बतायी गई है। शुक्ल यजुर्वेद के पुरुष सूक्त के सोलह मन्त्रों के अनन्तर नारायण सूक्त के छः मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। अतः यह सूक्त पुरुष सूक्त के बाद (उत्तर) में होने के कारण इस सूक्त को उत्तर नारायण सूक्त भी कहा जाता है। इस सूक्त में परम पुरुष का स्वरूप, उसकी प्राप्ति की विधि एवं परम पुरुष के ज्ञान का फल का बोध होता है। राष्ट्रगान सूक्त शुक्ल यजुर्वेद के 22 वें अध्याय में मन्त्र संख्या 22 में वर्णित एक प्रार्थना है जिसे वैदिक कालीन राष्ट्रगान कहा जाता है। यह प्रार्थना यज्ञों में स्वस्ति मंगल के रूप में गाई जाती थी। इसमें राष्ट्र के विभिन्न वर्गों के सुख-समृद्धि की कामना की गयी है। आइए उक्त चारों सूक्तों का विस्तृत अध्ययन करते हैं –

1.2 शिव-संकल्प सूक्त

सामान्य परिचय :

यह सूक्त युजर्वेद के 34वें अध्याय के प्रारम्भिक 6 मन्त्रों को 'शिवसंकल्प—सूक्त' कहा जाता है। ये छः मन्त्र अपनी संरचना और सन्देश में सारगर्भित व भावपूरित है। यहाँ शिव संकल्प से तात्पर्य शुभ संकल्प, श्रेष्ठ एवं कल्याणकारी संकल्प से है। पुरुष जैसा संकल्प करने लगता है, वैसा ही आचरण करता है और जैसा आचरण करता है, फिर वैसा ही बन जाता है। उनके अनुसार कर्म का आधार मन में उठने वाले विचार है। भारतीय वाङ्गमय में मन एवं उसके निग्रह पर मनीषियों ने बहुत कुछ कहा है। इसी क्रम में शिवसंकल्पसूक्त का सम्बन्ध भी मन से है। ईश्वर से की गई अपनी प्रार्थनाओं में वैदिक ऋषि कहते हैं कि वह उन्हें शारीरिक तथा वाचिक ही नहीं अपितु मानसिक पापों से भी दूर रखें। उनके मन में उठने वाले संकल्प सदैव शुभ व श्रेयस्कर हों। मनुष्य का मन अपूर्व क्षमतावान् है, उसमें जो संकल्प जाग जाएं, उनसे उसे विमुख करना बहुत कठिन कार्य है। इसीलिए ऋषि मन को शुभ व श्रेष्ठ संकल्पों से युक्त रखने

की प्रार्थना करत्ते हैं। इसमें प्रत्येक मन्त्र के अन्त में 'तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु' (मेरा मन शुभ विचारों से युक्त हो) यह सुभाषित दिया गया है। इन मन्त्रों में मन के विषय में अनेक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य दिए गए हैं। इस सूक्त में आधुनिक मनोविज्ञान के दर्शन होते हैं। इस सूक्त में विविध तरीकों से मन को शुभ संकल्पों से भरने के लिए प्रार्थना की गई है। शिव संकल्प सूक्त हमारे संकल्पों के परिष्कार कर और परिष्कृत संकल्पों को मन में स्थापित करने में अतीव सहायक है। शिव संकल्प सूक्त हमारे मन में शुभ व पवित्र विचारों की स्थापना हेतु एक आवाहन है। मन हमारी इन्द्रियों का स्वामी है। एक तरफ हमारीं इन्द्रियां भौतिक विषयवस्तु की तथ्यसूचना प्रदान करने का कार्य करती हैं, वहीं हमारा मन इन इन्द्रियों में ज्ञानरूपी प्रकाश बनकर इन तथ्यों का विश्लेषण कर व उनको निर्देश प्रदान कर हमारे विचारों के रुप में हमें यथोचित कर्म करने हेतु उत्प्रेरित करता है। इस प्रकार हमारा मन जितना शुभसंकल्प युक्त होता है, हमारा जीवन व इसका अभीष्ट कर्म उतना ही शुभ, सुन्दर, पवित्र और समग्र होता है।

इस सूक्त का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

सूक्त : यजुर्वेद 34.1-6
देवता : मन
छन्द : त्रिष्टुप्
ऋषि : याज्ञवल्यक
कुल मन्त्र : 06

मन्त्र सं- 01 मन दिव्य ज्योति है - प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि मन की गति अतितीव्र है, यह बहुत दूर तक जाता है। यह न केवल जागृत अवस्था में ही दूर तक जाता है, अपितु स्वप्न-अवस्था में भी उसी प्रकार दूर-दूर तक जाता है। यह ज्योतियों की ज्योति और प्रकाशों का प्रकाशक है। यह एक प्रकाश है, जो ज्ञान-विज्ञान के सभी तत्त्वों को प्रकाशित करता है। यह चेतना (Consciousness) का आधार है –

यज्जाग्रतो दुरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। 1।।

अन्वय - यत् जाग्रतः दूरं दैवं तत् सुप्तस्य तथा एव ऐति दूरंगम ज्योतिषां एकं ज्योतिः तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

अनुवाद- जो मन पुरुष की जाग्रत अवस्था में नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियों से अधिक दूर जाता है। जो आत्मदर्शन करने वाला है, जो पुरुष की सुषुप्ति अवस्था में उसी प्रकार लौट आता है (जिस प्रकार जाग्रत अवस्था में दूर जाता है) जो दूर जाने वाला है, जो सब बाह्य इन्द्रियों का एकमात्र प्रकाशक है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याख्या :- यहाँ मन और मन मन में उठे विचारों की अत्यन्त तीव्र और अनन्त गति की ओर संकेत है। मन और मन के विचारों को घनीभूत करके कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। उसे किसी आधार की आवश्यकता नहीं होती। जागृत अवस्था में जीवन-यापन करने के लिए लोक-व्यवहार एवं सांसारिक प्रपंचों में उलझा रहता है, अतः दूर दूर तक निकल जाता है,

क्योंकि यही मन तो व्यक्ति को कर्म करने की प्रेरणा देता है। मन की ये गतिशीलता सुप्तावस्था में शान्त हो जाती है। सुप्तावस्था (निद्रा) में मन के शान्त होने के कारण मन को अद्भुत बल मिलता है।

इन्द्रियां, जिन्हें 'ज्योतियां' कह कर पुकारा गया है, उनका प्रकाशक मन ही है अर्थात् ज्योतिषां ज्योतिरेकम् है। ऋषियों ने परमात्मा से प्रार्थना करते हुए मन को इन्द्रियों का प्रकाशक कहा है। मन के द्वारा सभी इन्द्रियां अपने अपने विषय का ज्ञान ग्रहण करती है। स्वाद रसना नहीं अपितु मन लेता है, नयनाभिराम दृश्य मन को मनोहर लगते हैं अन्यथा अमृतवर्षा करती चन्द्रकिरणें अग्निवर्षा करती हुई प्रतीत होती हैं। वाक् इन्द्रिय वही बोलती है व श्रवणेन्द्रिय वही सुनती हैं जो मन अभिप्रेरित करता है। यही मन स्पर्शेन्द्रिय से प्राप्त सम्वेदनों को सुखदुःखात्मक, मृदु-कठोर मनवाता है। अतः इस प्रकार सभी विषयों को प्रकाशित करने वाली इन्द्रियों का भी मन प्रकाशक है।

मन्त्र सं- 02 (मन मानव का प्रेरक है) - द्वितीय मन्त्र में बताया गया है कि मन प्रेरक तत्त्व है। यह विद्वानों आदि को यज्ञ एवं शास्त्रीय ज्ञान के लिए प्रेरित करता है। यह प्राणिमात्र के अन्दर विद्यमान एक पूज्य तत्त्व है। मन्त्र में स्पष्ट किया गया है कि मन ही प्रेरणा (Motivation) का मुख्य स्रोत है -

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अन्वय - येन (मनसा) अपसः मनीषिणः धीराः यज्ञे विदथेषु व कर्माणि कृण्वन्ति यद् अपूर्व यज्ञं, प्रजानाम् अन्तः तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

अनुवाद- जिस मन से कर्मनिष्ठ बुद्धिमान मेधावी पुरुष यज्ञ में तथा पूजाओं में कर्म करते है, जो सबसे पहले उत्पन्न होता है, जो यज्ञ करने में समर्थ है, जो प्राणीभाग के भीतर रहता है वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याख्या :- शिवसंकल्पसूक्त के दूसरे मन्त्र में ऋषिगण सबसे पहले यह बात कहते हैं कि मन से ही यज्ञ आदि कर्मों का सम्पादन होता है। शुद्ध मन ही यज्ञ आदि सत्कार्यों का करने वाला है। धीर-गम्भीर प्रतिभाशाली लोग विज्ञान आदि के कर्म, नवीन खोजें आदि स्वस्थ और सधे हुए मन से करते हैं। वैदिक विज्ञान एवं वैदिक गणित का ज्ञान आज के युग में भी प्रासंगिक है तथा प्रत्येक युग की चुनौती व कसौटी पर खरा उतरा है। इस मन्त्र में यह बात कही गई है कि सभी श्रेष्ठ कर्मों को इसी मन की स्वस्थ व शुद्ध अवस्था में किया जा सकता है। यही मन गृहस्थ को कर्मठ बनाता है एवं उसे नीति से जीविकोपार्जन की बुद्धि देता है। सन्यासी को भी यही मन विषयों से विमुख रखता है, जिससे वह सद्चिन्तन में रत रहे, विकारों की उत्पत्ति एवं उपद्रव से वह बचा रहे। तब ही सन्यासी तपस्या, सन्ध्या, पूजा आदि सत्कर्मों का करने वाला बन सकता है। यजुर्वेद में मन के नियन्त्रक देवता को मनस्पत: कहा गया है। मन की शुद्ध व शान्त स्थिति ही स्वस्थ चिन्तन एवं नवोन्मेष के हेतु नवीन क्षितिजों का उद्घाटन करती है। समस्त समाज के लिए सबसे पहले मन का निर्विकार होना आवश्यक है। अतः ऋषि परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हमारा मन शुभ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो!

मन्त्र सं - 03 (मन के तीन विशिष्ट गुण) - तृतीय मन्त्र मन के तीन विशिष्ट गुणों का उल्लेख किया गया है। ये हैं - प्रज्ञान (जानने की शक्ति, Cognition), चेतस् (स्मरण करना, Recollection) और धृति (धारणा शक्ति, Power of retention)। साथ ही यह भी कहा गया है कि मन प्राणिमात्र के अन्दर विद्यमान एक अमर ज्योति है। इसके बिना जीव कोई काम नहीं कर सकता है -

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं च न कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अन्वय - यत् प्रज्ञानम् उत चेतः धृतिः च यत् प्रजासु अमृतं ज्योतिः यस्मात् ऋते किंचन कर्म क्रियते न। तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

अनुवाद- जो विशेष ज्ञान तथा सामान्य ज्ञान का साधन है, जो धैर्यरूप है, जो प्राणियों के भीतर अमर ज्योति है, जिसके बिना कुछ भी कर्म नहीं किये जाते, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याख्या :- इस मन्त्र में मन को प्रखर ज्ञान, चेतना व धृति से युक्त कहा गया है। धृति का अर्थ केवल धैर्य ही नहीं अपितु स्थैर्य भी है। इस शब्द में स्फूर्ति, दृढ संकल्प, साहस तथा सहारा देने के भाव भी समाहित हैं। अतएव इसका संकुचित अर्थ न लेकर इसे विस्तृत परिप्रेक्ष्य में देखना अपेक्षणीय है।

आगे इस मन्त्र में कहा गया है कि यह मन सब में अमर-ज्योति के रूप में स्थित है। यह चेतना ऋषियों ने सभी में पायी है। यही कारण है कि जगत के सर्वप्रथम आदि कवि वाल्मीकि एक व्याध (शिकारी) से मुनि बन गए, महामूर्ख कालिदास महाकवि के रूप में उभर कर आये। यह चेतना मनुष्य के भीतर निहित वह अमर ज्योति है जिसके बिना कुछ भी कर पाना सम्भव नहीं है। ज्ञान जो सब के भीतर ढंका हुआ है, वह मन के द्वारा प्रकशित किये जाने के कारण मन को अमर-ज्योति कहा है।

मन्त्र सं - 04 (मन त्रिकालदर्शी है) - चतुर्थ मन्त्र में बताया गया है कि मन त्रिकालदर्शी है। वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों काल इसकी सीमा में आते हैं। मन से तीनों कालों का दर्शन होता है। मन तीनों कालों के विषय में चिन्तन और मनन कर सकता है –

येनेदं भूतं भवनं भविष्य
त्परिं गृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अन्वय - येन अमृतेन (मनसा) इदं भूत, भविष्यत् भुवनं सर्वं परिगृहितम् येन सप्तहोता यज्ञः तायते तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

अनुवाद - जिस अमर मन के द्वारा इस संसार में भूत, भविष्यत् ओर वर्तमान काल के सभी पदार्थ जाने जाते है। जिस मन से सात होता वाला अग्निष्टोम यज्ञ किया जाता है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याख्या :- शिवसंकल्पसूक्त के चतुर्थ मन्त्र के अनुसार मन में सभी कालों का ज्ञान निहित है। मन के द्वारा ही समय को, तीनों कालों को जाना जाता है। इस मन के भीतर ही मनुष्य के जन्मजन्मांतर का ज्ञान निहित है। साधक अपनी साधना की उन्नत अवस्था में अपने अतीत एव भावी को जानने में समर्थ होता है। मन को वशवर्त्ती करने वाला योगी तीनों कालों में होने वाली घटनाओं को अनुभूत करने में सक्षम होता है।

मन से ही सप्तहोता यज्ञ का विस्तार करते हैं। यज्ञों का विस्तार, शुभ कर्मों का प्रसार, शुद्ध तथा पापरहित मन वाले व्यक्तियों द्वारा ही किया जाता है। अग्निपुराण के अनुसार अग्निदेव सात जिह्वाओं से युक्त हैं – कराली, धूमिनि, श्वेता, लोहिता, नीललोहिता, सुवर्ण तथा पद्मरागा। यह सातों अग्नि की सात ज्वालाएँ हैं।

मन्त्र सं – 05 (मन ज्ञान का आधार है) – पञ्चम मन्त्र में कहा गया है कि मन में ही सारे वेद अर्थात् सारा ज्ञान-विज्ञान और बुद्धि (Intelligence) समाविष्ट है। मन में ही चित्त शक्ति (प्रज्ञाशक्ति, Cognition Faculty) विद्यमान है –

यस्मिनृचः साम यजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।

यस्मिन्श्चित्तंसर्वमोतं प्रजानांतन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अन्वय - रथनाभौ अराः इव यस्मिन् ऋचाः साम यजूंषि प्रतिष्ठिता, यस्मित् प्रजानां सर्वं चित्तं ओतं तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

अनुवाद- रथचक्र की नाभि में तिल्लियों की तरह जिस मन में ऋचाएँ, साम तथा यजुष् प्रतिष्ठित है। जिस (मन) में प्राणियों का सर्वपदार्थविषयक ज्ञान निहित है, वह मेरा मन शुभसंकल्प वाला हो।

व्याख्या - जिस मन में ऋग्वेद की ऋचाएं निहित हैं अर्थात् समाई हुई हैं, जिसमें सामवेद तथा यजुर्वेद के मन्त्र प्रतिष्ठित हैं। ऋषियों के अनुसार वेदों का समस्त ज्ञान मन के भीतर ही समाविष्ट है और वह भी कुछ इस तरह जैसे रथ के पहिये में अरे लगे होते हैं। आगे कहा है कि प्रजाजनों का समस्त ज्ञान भी इस मन में प्रतिष्ठित रहता है। प्रकारान्तर से मन सम्पूर्ण ज्ञान अपने भीतर समाहित किये हुए है। किन्तु उस ज्ञान के सकारात्मक उपयोग से ही विश्व-कल्याण संभव हो सकता है। संहारक शस्त्रों की खोज करने वाले, बमों और मानव बमों द्वारा विनाश की विभीषिका से विश्व को दहला देने वाले लोगों के पास भी जानकारियों की कमी नहीं है, कमी है तो शुभ भावों व कल्याण-कामना की।ऐसे लोग अपने विनाशक संकल्पों से मानवता को केवल हानि ही पहुंचाते रहे हैं। अतः ऋषि प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे परमात्मा! हमारा मन श्रेष्ठ और कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो।

मन्त्र सं – 06 मन का निवास हृदय में है - षष्ठ मन्त्र में कहा गया है कि मन का निवास हृदय में है। इसकी गति अतितीव्र है और इसमें असाधारण कार्यक्षमता है। यह एक सुयोग्य सारथि है, जो इन्द्रियरूपी घोड़ों को ठीक ढंग से नियन्त्रित रखता है।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्या
न्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अन्वय - यत् मनुष्यान् नेनीयते इव सुसारथिः अश्वान् अभिशुभिः वाजिनः इव यत् हृत्प्रतिष्ठं यत् अजिरं जविष्ठं तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

अनुवाद- जो मन मनुष्यों को बार-बार इधर-उधर प्रेरित करता है, जैसे अच्छा सारथी घोड़ों को ओर लगामों द्वारा घोड़ों की तरह अपने वश में रखता है। जो हृदय में स्थित है, जो जरारहित एवं अत्यन्त वेगवान है। वह मेरा मन शुभसंकल्प वाला हो।

शिवसंकल्पसूक्त के षष्ठ मन्त्र में ऋषियों ने मन को उत्तम सारथी की उपमा दी है। एक कुशल सारथी हाथ में लगाम ले कर अपने तीव्र वेगगामी अश्वों को भलीभांति अपने नियन्त्रण में रखता है और वे अश्व उसीकी निर्धारित दिशा में अपनी द्रुत गति से दौड़ते हैं। सारथी का मनोरथ होता है निज लक्ष्य तक पहुँचना। अश्व उपकरण हैं, उसे पहुँचाने के लिए, और वे वही भूमिका निभाते हैं। यह स्थिति आदर्श है, जो लगाम को थामे हुए सारथि को उसका इष्ट गन्तव्य देती है। अतः अपनी प्रार्थना में ऋषिगण मन को एक कुशल सारथी के रूप में देखते हुए कहते हैं कि जो मन लगाम थामे, अति वेग से दौड़ते हुए अश्वों को उत्तम सारथी की भांति, मनुष्यों को उनके शुभ गन्तव्य तक ले जाता है, ऐसा हमारा मन शुभ संकल्पों से युक्त हो। छठे मन्त्र में मन को ज़रारहित व अतिवेगशील भी कहा है।

मन को नियन्त्रण में रखने वाला ही वास्तव में कुशल, प्रवीण या उत्तम सारथी है। दूसरे शब्दों में सधा हुआ, विवेकशील मन ही प्रवीण सारथी है, क्योंकि मन में जो संकल्प उठ जाते हैं, उनसे मन को वियुक्त करना कठिन व दुःसाध्य होता है, वह सही दिशा में ले जाये, उसीमें जीवन का श्रेय है, अन्यथा अधोगति भी वही मन करता है। जैसे अनियन्त्रित व अप्रशिक्षित अश्व अपने सवार को नीचे गिरा देता हैं, वैसे ही अनियन्त्रित और स्वेच्छाचारी मन मनुष्य को पतन के गर्त्त में गिरा देता है। ऐसा मन काम्य नहीं हैं। अतएव ऋषि कुशल सारथी के उपमान द्वारा सधे हुए मन का वरण करते हुए कहते हैं, कि हमारा मन श्रेष्ठ और कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो।

1.3 पुरुष सूक्त

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में मानव अनादि काल से चिन्तन करता रहा है। सृष्टि को देखकर मानव जैसे विचारशील प्राणी का चिन्तन स्वाभाविक ही है कि इस सृष्टि की रचना कैसे हुई? किसलिए हुई? तथा उसके निमित उपादानादि कारण क्या थे? इस जगत् में उपलब्ध समस्त प्राकृतिक पदार्थों की उत्पत्ति कैसे हुई, इनको किसने बनाया? पृथ्वी, आकाश, सूर्य, अग्नि उषा आदि का निर्माण किसने किया? कैसे आकाश तथा पृथ्वी का निर्माण हुआ? उनका उत्पत्ति-क्रम क्या था? निर्माता का आधार क्या था? सृष्टि विषयक घटनाओं का क्रम क्या था? इत्यादि जिज्ञासाओं तथा प्रश्नों का चिन्तन वैदिक ऋषियों ने किया है। ये प्रश्न निश्चित ही दार्शनिक थे और इनके समाधान भी वैदिक ऋषियों ने उपस्थित किये। ये उपाय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सारगर्भित होने के कारण भारतीय दर्शन के आधार बने। वैदिक दृष्टि से सूक्ष्म से स्थूल की ओर आना ही 'सृष्टि' है। जड़ चेतन पदार्थों की उत्पत्ति निर्मिति तथा सर्जना को 'सृष्टि' कहा जाता है। इस क्रम में विश्वमानवजन्य इन शंकाओं का समाधान करने वाला पुरुष सूक्त है जो इन आशंकाओं का वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करता है। पुरुष सूक्त के अनुसार विश्व एक प्राकृतिक सृष्टि है। समस्त देवगण उस प्रकृति के सहायक उपकरण मात्र हैं। पुरुष की आध्यात्मिक स्थिति एवं विश्व की जड़ चेतनात्मक संस्थिति में पूर्ण सामंजस्य है। पुरुष एक देव है, जिसके विभिन्न

अवयव ही विश्व के विभिन्न भाग हैं। वर्तमान दृश्य जगत् का आरम्भ विराट् पुरुष से हुआ है। यास्कीय निरुक्ति- पुरुषः पुरिषयः पुरिषादः पूरयतेर्वा भी इस तथ्य की पुष्टि करती है अर्थात् ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाला चेतन तत्त्व पुरुष है, वही व्यष्टि रूप से पृथक्-पृथक् प्रत्येक पिण्ड को व्याप्त करता है। वेदों में प्राप्त सूक्तों में पुरुषसूक्त का अत्यन्त महनीय स्थान है। आध्यात्मिक तथा दार्शनिक दृष्टि से इस सूक्त का बड़ा महत्त्व है। यह सूक्त सृष्टिविज्ञान की दृष्टि से अति महत्त्व का है। सृष्टि (ब्रह्माण्ड) विज्ञान अथवा कॉस्मोलॉजी, आधुनिक विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें सृष्टि के निर्माण एवं विकास से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। यजुर्वेद में सृष्टि (ब्रह्माण्ड) विद्या अथवा कॉस्मोलॉजी से सम्बद्ध एक विशिष्ट सूक्त है जो पुरुष सूक्त के रूप में विख्यात है। पुरुष सूक्त चारों वेदों में उपलब्ध होता है[1] यहाँ जिस पुरुष सूक्त की चर्चा की जा रही है वह यजुर्वेद के 31 वें अध्याय के मन्त्र संख्या 1 से 16 मध्य निबद्ध है। यह सूक्त सृष्टि (ब्रह्माण्ड) के निर्माण के विषय में एक नियत सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। इस सूक्त का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है –

इस सूक्त का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

सूक्त : यजुर्वेद 31.1-16
देवता : पुरुष
छन्द : अनुष्टुप्
ऋषि : नारायण
कुल मन्त्र : 16

विराट् पुरुष का स्वरूप (मन्त्र सं0 01 से 02) –

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिम् सर्वतः वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।। 1।।

अन्वय - पुरुषः सहस्रशीर्षा, सहस्राक्षः, स्रहस्रपातः सः भूमि सर्वतः वृत्वा दशाङ्गुलम् अति अतिष्ठत्।

अनुवाद - पुरुषः = परमपुरुष परमात्मा। सहस्रशीर्षा = हजारों शिरों वाला अर्थात् अनन्त ज्ञान सम्पन्न। सहस्राक्षः = सहस्त्रों नेत्रों वाला अर्थात् अनन्तदर्शनशक्ति सम्पन्न। सहस्रपात् = हजारों पैरों वाला अर्थात् अनन्तगति सम्पन्न है। सः = वह पुरुष। भूमिम् = पृथ्वी को। विश्वतः = सभी दिशाओं से। वृत्वा = व्याप्त करके। दशाङ्गुलम् = नाभि से दश अङ्गुल ऊपर हृदय प्रदेश में अथवा केन्द्र, अन्तरिक्ष से दश अङ्गुल ऊपर द्युलोक में। अत्यतिष्ठत् = अतिक्रमण करके स्थित है।

व्याख्या- यहाँ पर शिर, आँख और पैर से क्रमशः ब्रह्म की इन तीन शक्तियों की ओर संकेत किया गया है-(1) ज्ञान, अनुभव (2)दर्शन, निरीक्षण (3)गति, धारण। वह परमपुरुष परमेश्वर हजारों सिरों वाला है अर्थात् अनन्त ज्ञान से परिपूर्ण है। सिर, ज्ञान का प्रतीक है अतः मन्त्र में आगत 'अनन्त' पद से परमेश्वर के ज्ञान को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ द्योतित करता है। वह हजारों नेत्रों वाला है अर्थात् अनन्त दर्शन शक्ति से युक्त है। यहाँ 'नेत्र' पद दर्शनशक्ति का परिचायक है, वह परमेश्वर सभी प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों का दृष्टा है। वह हजारों पैरों वाला है अर्थात् अनन्त

[1] ऋग्वेद 10.10.1-16, यजुर्वेद 31.1-22, अथर्ववेद 19.6.1-16

गति से अन्वित है, यहाँ 'पात्' शब्द गति का परिचायक है, परमेश्वर की गति सर्वत्र है। वह पुरुष परमेश्वर पृथ्वी को सभी ओर से व्याप्त करके प्राणियों के शरीर में नाभि से दस अंगुल परिमाण ऊपर हृदय में अवस्थित है इसी प्रकार ब्रह्माण्ड रूपी शरीर में नाभि, अन्तरिक्ष से दशागुंङ्गल परिमित ऊपर द्युलोक में परमपुरुष अवस्थित है तथा वहीं से समस्त ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त हो रहा है। यास्क के अनुसार पुरुषः = पुरिशयः, पुरिषादः, पूरयतेर्वा-यास्कः, अर्थात् ब्रह्माण्डदेह में शयन करता है, बैठा है अथवा पूरित करता है इसीलिये 'पुरुष' कहलाता है।

पुरुष एवेदं सर्व यद् भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्त्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।। 2।।

अन्वय - इदं सर्वं यद् भूतं यद् च भव्यं पुरुषः एव। च अमृतत्त्वस्य ईशानः यद् अन्नेन अतिरोहति।

अनुवाद - यत् = जो। भूतम् = भूतकालिक जगत् उत्पन्न हो चुका है। यत् च = तथा जो। भव्यम् = भविष्य में जगत् उत्पन्न होगा। इदं सर्वम् = तथा यह समस्त वर्तमान कालीन जगत्। पुरुषः एव = पुरुष ही है, पुरुषमय ही है। उत = तथा। अमृतत्त्वस्य = अमृतभाव का। ईशानः = स्वामी है। यत् = जो कि पुरुष। अन्नेन = अन्न से, भोज्य पदार्थों से। अतिरोहति = वृद्धि को प्राप्त करता है।

व्याख्या— जो भूतकाल में उत्पन्न हो चुका है, जो भविष्यत् काल में उत्पन्न होगा तथा जो वर्तमान काल में दृश्यमान् जगत् है वह पुरुष ही है अर्थात् त्रिविध कालों में समुत्पन्न यह जगत् पुरुषमय ही है। वह परमेश्वर पुरुष अमृतभाव का स्वामी है जो अन्नादि भोग्य पदार्थों से प्राणियों के शरीर में बढता रहता है तथा प्राणियों के वर्धन से जगत् के वर्धन रूप अवस्था को प्राप्त होता रहता है।

विराट पुरुष की सर्वव्यापकता (मन्त्र सं0 03 से 04)–

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।। 3।।

अन्वय - एतावान् अस्य महिमा अतः च ज्यायान् पुरुषः। तस्य (एकः) पादः विश्वा भूतानि तस्य त्रिपाद अमृतं दिवि।

अनुवाद -- एतावान् = इतनी ही। अस्य = इस परमेश्वर की। महिमा = प्रभाव मात्र है। पुरुषः च = और पुरुष। अतः = इससे भी। ज्यायान् = अधिक विशाल है। विश्वा भूतानि = समस्त प्राणी। अस्य = इस परमेश्वर के। पादः = चतुर्थांश मात्र है। अस्य = उसके। त्रिपात् = तीन पाद (तीन अंश)। दिवि = द्युलोक में। अमृतम् = अविनाशी रूप से अवस्थित हैं।

व्याख्या- उस परमेश्वर की, अतीत अनागत वर्तमान जगत् रूपी अवस्थिति महिमा मात्र हैं अर्थात् यह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। वास्तविक पुरुष परमेश्वर तो उससे भी विशाल है। समस्त प्राणी उसका चतुर्थांश है तथा अवशिष्ट तीन अंश, द्युलोक में अविनाशी रूप से अवस्थित है अर्थात् उनमें जन्म मृत्यु स्थिति आदि का क्रम नहीं रहता है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस पुरुष की एक चौथाई जो यह दृश्यमान जगत् है तथा उसका जो तीन चतुर्थांश है वह अमर लोक में स्थित है अथवा द्युलोक में अवस्थित है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुष: पादोऽस्येहाभवत्पुन:।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥ 4॥

अन्वय- त्रिपात् पुरुष: ऊर्ध्व: उदैत्। अस्य पाद: इह पुन: अभवत्। तत: साशनानशने अभि विश्वङ्व्यक्रामत्।

अनुवाद- त्रिपात् = संसार से रहित अमृतमय तीन पादों वाला। पुरुष: = परमेश्वर ऊर्ध्वम् = जगत् से ऊपर। उदैत् = उत्कृष्ट रूप से अवस्थित है। अस्य पाद: = इसका एक चरण। इह = इस चराचर जगत् के रूप में। पुन: = बार-बार। अभवत् = उत्पन्न होता है। तत: = उसके पश्चात्। साशनानशने = भोजन करने वाले सचेतन प्राणियों तथा भोजन न करने वाले अचेतन पदार्थों को। अभि = लक्ष्य करके। व्यक्रामत = विविधरूपों से व्याप्त किया।

व्याख्या- संसार से ऊपर अमृतमय तीन पादों वाल परमेश्वर, जगत् से ऊपर अविनाशी एवं उत्कृष्ट रूप से अवस्थित है। उसका एक पाद अर्थात् चतुर्थांश माया से अन्वित होकर नश्वर संसार के रूप में बार-बार उत्पन्न होता रहता है। इसके पश्चात् भोक्ता एवं भोग्य अर्थात् चेतन व जड़ पदार्थों का स्वरूप धारण कर उस पुरुष ने जगत् को विविध रूपों से व्याप्त कर लिया।

विराट् पुरुष से जीवात्मा पृथ्वी एवं शरीरों की उत्पत्ति (मन्त्र सं0 05)

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुष:।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुर:॥ 5॥

अन्वय - तस्मात् विराट् अजायत्। विराज: अधि पुरुष:। स: जात: अत्यरिच्यत। पश्चात् भूमिम् अथो पुर:।

अनुवाद- तस्मात् = उस माया से परिव्याप्त पुरुष के चतुर्थांश से। विराट् = विविध रूप से दैदीप्यमान ब्रह्माण्डरूपी शरीर। अजायत = उत्पन्न हुआ। विराज: = उस ब्रह्माण्ड देह के। अधि: = ऊपर अधिष्ठाता के रूप में। पुरुष: = संचालक जीवात्मा उत्पन्न हुआ। स: = वह जीवात्मा पुरुष। जात: = उत्पन्न होते ही। अत्यरिच्यत = चर-अचर, प्राणि-पदार्थों के रूप में वृद्धि को प्राप्त कर गया। पश्चात् = उसके बाद। भूमिम् = पृथ्वी को। अथ = और। पुर: = शरीरों को (बनाया)।

व्याख्या- उस मायान्वित आदि पुरुष के चतुर्थांश से विविध रूपात्मक ब्रह्माण्ड या जगत् उत्पन्न हुआ। उस ब्रह्माण्ड के अधिष्ठाता अथवा संचालक के रूप में जीवात्मा पुरुष उत्पन्न हुआ। उसी एकमात्र परमात्म तत्त्व ने माया द्वारा ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करके, उसमें जीव रूप से प्रवेश करके स्वयं को देवातात्मा जीव के रूप में परिणत कर लिया। उत्पन्न होते ही वह देवतात्मा पशु, मनुष्य, प्रस्तरादि के रूप में वृद्धि को प्राप्त कर गया। इसके बाद उसने पृथ्वी और शरीरों को बनाया।

विराट् पुरुष से सृष्टि यज्ञ का प्रारम्भ (मन्त्र सं0 06 से 07) :-

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्म: शरद्धवि: ॥ 6॥

अन्वय - यत् देवा: पुरुषेण हविषा यज्ञम् अतन्वत। वसन्त: अस्य आज्यम् आसीत्, ग्रीष्म इध्म: शरत् हवि:।

अनुवाद- यत् = जब। देवा: = देवताओं ने। पुरुषेण हविषा = विराट् पुरुष रूप हवि के द्वारा। यज्ञम् = मानसिक यज्ञ को। अतन्वत = विस्तृत किया, फैलाया, सम्पन्न किया (तब)। वसन्त: = बसन्त ऋतु। अस्य = इसका। आज्यम् = घृत। आसीत् = थी। ग्रीष्म: इध्म: = ग्रीष्म ऋतु समिधा (ईंधन) थी। शरत् हवि: = शरत् ऋतु हवि (हव्य पदार्थ) के रूप में हुई।

व्याख्या- जब विराट् ब्रह्माण्ड तथा प्राणियों के शरीरों की उत्पत्ति हो गई थी तब आगे सृष्टि को विकसित करने के लिए देवताओं ने पुरुष रूप हवि के द्वारा संकलित मानसिक यज्ञ को विस्तृत किया। उस समय वसन्त ऋतु उस यज्ञ का घृत थी, ग्रीष्म ऋतु ईंधन तथा शरद् ऋतु हवि बनी अर्थात्i वसन्त ऋतुओं को आज्यादि के रूप में संकल्पित करके सृष्टि का विस्तार किया।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत:।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ 7॥

अन्वय- अग्रत: जातं तं यज्ञं पुरुषं बर्हिषि प्रौक्षन्। तेन देवा: ये च साध्या: ऋषय: अयजन्त।

अनुवाद - अग्रत: = सृष्टि के आदि में। जातम् = उत्पन्न। तम् = उस। यज्ञं पुरुषम् = यज्ञ के साधनभूत पुरुष रूप पशु को। बर्हिषि = मानसिक यज्ञ में। प्रौक्षन्= अभिसिंचित किया, प्रोक्षित किया। तेन = उस पुरुष रूप पशु से। देवा: = देवताओं ने। ये च = और जो। साध्या: = सृष्टि उत्पत्ति के साधनभूत। ऋषय: = ऋषिगण हैं उन्होने। अयजन्त = यजन किया, यज्ञ किया।

व्याख्या- सृष्टि के आदि में उत्पन्न उस यज्ञ के साधनभूत पुरुषरूप पशु को मानसिक यज्ञ में अभिषिक्त किया। उस अभिषिक्त अथवा प्रोक्षित पुरुष से देवताओं ने तथा जो भी सृष्टि-उत्पत्ति के साधनभूत ऋषिगण हैं, उन्होंने यजन किया, सृष्टि का आगे विस्तार किया।

सृष्टि यज्ञ से पक्षी, पशु एवं वेदों की उत्पत्ति (मन्त्र सं0 08 से 10) –

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत: संभृतं पृषदाज्यम्।
पशून्तांश्चक्रे वायव्यान् आरण्यान् ग्राम्यांश्च ये ॥ 8॥

अन्वय- सर्वहुत: तस्मात् यज्ञात् पृषदाज्यं संभृतम्। वायव्यान् आरण्यान् ये च ग्राम्या: (पशव: आसन्) तान् पशून् चक्रे।

अनुवाद- सर्वहुत: = सर्वव्यापक पुरुष को जिसमें आहूत कर दिया गया। तस्मात् = उस। यज्ञात् = सृष्टि यज्ञ से। पृषदाज्यम् = दही मिश्रित घृत जैसा पदार्थ। संभृतम् = उत्पन्न हुआ। वायव्यान् = वायु में विचरण करने वाले पक्षी। आरण्यान् = वन में विचरण करने वाले हरिणादि पशु। ये च = तथा जो। ग्राम्या: = गाय बैला आदि ग्राम्य पशु हैं। तान् = उन। पशुन् = पशुओं की। चक्रे = उत्पत्ति की।

व्याख्या- जिसमें सर्वव्यापक पुरुषतत्त्व को आहूत कर दिया गया, उस सृष्टि उत्पादक यज्ञ से दधिमिश्रित कुछ स्निग्ध घृत जैसा पदार्थ उत्पन्न हुआ। उस पदार्थ से देवताओं ने विभिन्न प्रकार के वायव्य, आरण्य तथा ग्राम्य पशुओं को उत्पन्न किया।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत: ऋच: सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत॥ 9॥

अन्वय- सर्वहुत: तस्मात् यज्ञात् ऋच: सामानि जज्ञिरे। तस्मात् छन्दासि तस्मात् यजु: अजायत्।

अनुवाद - सर्वहुत: = सब कुछ आहूत कर दिये गये उस। तस्मात् = उस। यज्ञात् = यज्ञ से। ऋच: = ऋग्वेद के मन्त्र। सामानि = साममन्त्र। जज्ञिरे = उत्पन्न हुए। तस्मात् = उसी यज्ञ से। छन्दांसि = गायत्री आदि छन्द। तस्मात् = उसी यज्ञ से। यजु: = यजुर्वेद के मन्त्र। अजायत् = उत्पन्न हुए।

व्याख्या - जिस यज्ञ में सबका आत्मस्वरूप पुरुष आहूत कर दिया गया उस यज्ञ से ऋग्वेद के मन्त्र, सामवेद, गायत्री आदि छन्द तथा यजुर्वेद उत्पन्न हुए।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादत:।
गावो हजज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावय: ॥ 10॥

अन्वय- तस्मात् अश्वा: अजायन्त। ये के च उभयादत:। तस्मात् ह गाव: जज्ञिरे। तस्मात् अजावय: जाता:।

अनुवाद - तस्मात् = उस सृष्टि यज्ञ से। अश्वा: = अश्व अर्थात् अनन्त बलराशियाँ। अजायन्त = उत्पन्न हुई। ये के च = तथा जो कुछ। उभयादत: दोनों ओर दाँत वाले प्राणी है वे भी उत्पन्न हुए। तस्मात् ह = उस यज्ञ से अवश्य ही। गाव: = किरणें या रश्मियाँ। जज्ञिरे = उत्पन्न हुई। तस्मात् = उस सृष्टि यज्ञ से। अजावय: = बकरियां, भेडें आदि पशु अथवा अजन्मा गतिशील प्राणतत्त्व। जाता: = उत्पन्न हुए।

व्याख्या- उस सृष्टि उत्पत्ति यज्ञ से अनन्त बलराशियाँ अर्थात् अश्व उत्पन्न हुए तथा जो कुछ दो छोर वाले विद्युतादि तत्त्व अर्थात् दोनों ओर दाँत वाले प्राणी उत्पन्न हुए। उस यज्ञ से गौएं अर्थात् प्रकाश रश्मियाँ समुत्पन्न हुई तथा उसी यज्ञ से अजन्मा, गतिशील प्राण तत्त्व अर्थात् अजा और वय उत्पन्न हुए।

यज्ञात्मक विराट्पुरुष के अंग(मन्त्र सं0 11से 12)

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥

अन्वय - यत् पुरुषम् व्यदधु:, कतिधा व्यकल्पयन्? अस्य मुखम् किम्? कौ बाहू, कौ ऊरू पादौ उच्येते?

अनुवाद- यत् = जब पुरुषम् = सृष्टि-उत्पत्ति यज्ञ में पुरुष परमात्मा को। व्यदधु: = प्राणरूप देवताओं ने संकल्प से उत्पादित किया तब। कतिधा = कितने रूपों में। व्यकल्पयन् = विभेदित किया। अस्य= उस परमेश्वर पुरुष के। मुखं किं = मुख स्थानीय अर्थात् शीर्षस्थ, श्रेष्ठ तत्त्व कौनसा था? कौ बाहू= भुजाएं अथवा शक्तियुक्त तत्त्व क्या था? कौ ऊरू= जंघाये क्या थी अथवा आधार तत्त्व क्या था? पादौ = पदस्थानीय अथवा सेवकतत्त्व क्या? उच्येते = कहे गये हैं?

व्याख्या- जब सृष्टिउत्पत्ति या में प्रजापति के प्राणरूप देवताओं ने पुरुष परमेश्वर का आधान किया तब उसे कितने भागों अथवा रूपों में विभाजित किया? उस परमेश्वर पुरुष का शीर्षस्थ स्थान क्या था? बाहू या शक्ति तत्त्व क्या था? जंघाएँ अथवा आधार और पैर अथवा सेवकतत्त्व किसे कहा गया है?

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्य: कृत:।
ऊरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां शूद्रो अजायत् ॥12॥

अन्वय- अस्य मुखं ब्राह्मण: आसीत्। बाहू राजन्य: कृत:। ऊरू यद् अस्य तद् वैश्य:। पद्भ्यां शूद्र: अजायत।

अनुवाद - अस्य = इस पुरुष के। मुखम् = मुख अर्थात् श्रेष्ठतम भाग। ब्राह्मण: = ब्राह्मण अथवा ब्रह्मवेत्ता। आसीत् = था। बाहू = भुजाएं अथवा शक्ति सम्पन्न तत्त्व। राजन्य: = क्षत्रिय वर्ण। कृत: = कर दिये गये। अस्य = इस परमेश्वर के। यद् = जो। ऊरू = जंघाएं अथवा आधारस्तभ थे, वे। वैश्य: = वैश्य वर्ण थीं। पद्भ्यां = पैरों से। शूद्र: = शूद्रवर्ण अथवा सेवक तत्त्व। अजायत् = समुत्पन्न हुआ।

व्याख्या- इस मन्त्र में समाज के चार वर्णों की संरचना परमेश्वर के विभिन्न अंगों से उत्पन्न बताई गई है। वस्तुत: चार अङ्ग विभिन्न कार्यो के प्रतीक हैं अत: उन्हीं कार्यों के आधार पर उन वर्णों की उत्पत्ति हुई। उस परमपुरुष परमेश्वर का मुख ब्राह्मण वर्ण हुआ अर्थात् उसका श्रेष्ठतम भाग ब्राह्मणवर्ण कहलाया। भुजाओं से क्षत्रिय वर्ण हुआ अर्थात् उसका बल क्षत्रिय वर्ण के रूप में प्रादुर्भूत हुआ। उस परमेश्वर की जंघाएँ वैश्यवर्ण हुआ तथा पैरों से शूद्र वर्ण का प्रादुर्भाव हुआ।

विराट् पुरुष से ब्रह्माण्ड का आविर्भाव (मन्त्र सं0 13 से 14) –

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो: सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायते ॥ 13॥

अन्वय- मनस: चन्द्रमा जात:, चक्षो: सूर्य: अजायत, श्रोत्रात् वायुः च प्राणः च मुखात् अग्निः अजायत।

अनुवाद- मनस:= मन से। चन्द्रमा जात:= चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। चक्षो:= नेत्र से। सूर्य: = सूर्य। अजायत्= उत्पन्न हुआ। श्रोत्रात् = कान से। वायुः= हवा। प्राणः च= और प्राण। मुखात् = मुख से। अग्निः = अग्नि अजायत = =उत्पन्न हुई।

व्याख्या- इस विराट् पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुआ, कान से वायु और अग्नि उत्पन्न हुए तथा मुख से अग्नि उत्पन्न हुई। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु क्रमश: चंचलता, तैजस्, प्रदीप्तता तथा गतिशीलता के प्रतीक हैं।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौ: समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिश: श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ 14॥

अन्वय- नाभ्या: अन्तरिक्षम् आसीत्। शीर्ष्णः द्यौ: समवर्तत। पद्भ्याम् भूमि: श्रोत्रात् दिश: तथा लोकान् अकल्पयन्।

अनुवाद- नाभ्या:= नाभि से। अन्तरिक्षं= अन्तरिक्षलोक। आसीत् = था। शीर्ष्णः = सिर से। द्यौ: = द्यु लोक। समवर्तत् = उत्पन्न हुआ। पद्भ्यां = पैरों से। भूमि: = पृथ्वी। श्रोत्रात् = कानों से। दिश: = दिशाएं उत्पन्न हुई। तथा = इस प्रकार। लोकान् = विभिन्न लोकों की। अकल्पयन् = कल्पना की।

व्याख्या- उस विराट् पुरुष पुरुष की नाभि से अन्तरिक्षलोक बना अर्थात् अन्तरिक्ष पुरुष परमेश्वर की नाभि है। उसके सिर से द्युलोक उत्पन्न हुआ अर्थात् द्युलोक परमेश्वर का सिर है। उसके पैरों से पृथ्वी उत्पन्न हुई अर्थात् पृथ्वीलोक परमेश्वर के पैर हैं। पुरुष के कान से दस दिशाएं उत्पन्न हुई अर्थात् दिशाएं परमेश्वर की कर्णस्थानीय है। इस प्रकार विविध लोकों की परिकल्पना की गई है।

सृष्टि यज्ञ का निरूपण (मन्त्र सं0 15 से 16)-

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि: सप्त समिध: कृता:।

देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ 15॥

अन्वय- यज्ञं तन्वाना: देवा: यत् पुरुषं पशुम् अबध्नन् पुरुषं, अस्य सप्त परिधय: आसन्। त्रि: सप्त समिध: कृता:।

अनुवाद- यज्ञम् = सृष्टियुत्पत्ति यज्ञ को। तन्वाना: = विस्तार करते हुए। यत् = जब। देवा:= देवताओं ने। पुरुषम्= परमेश्वर पुरुष रूप। पशुम्= पशु को। अबध्नन् = बांधा, स्तुति में आधान किया। अस्य= उस यज्ञ की। सप्त= सात। परिधय: = परिधियाँ या स्तर। आसन्= थीं। त्रि: सप्त= इक्कीस। समिध:= समिधायें, कृता: = बनाई गई।

व्याख्या- सृष्टि-उत्पत्ति यज्ञ का विस्तार करते हुए देवताओं ने जब परमेश्वर पुरुष रूप पशु को बांधा अर्थात् अपनी स्तुतियो में आधान किया तब उस यज्ञ की गायत्री आदि सात छन्द सात परिधियाँ थी तथा 12 महिने, पाँच ऋतुएँ, तीन लोक इक्कीसवाँ सूर्य, ये इक्कीस समिधाएँ अर्थात् ईंधन बनीं।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

ते ह नाकं महिमान: सचन्त यत्र पूर्वे साध्या: सन्ति देवा: ॥ 16॥

अन्वय- देवा: यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त। तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। महिमान: ते ह नाकं सचन्त, यत्र पूर्वे साध्या: देवा: सन्ति।

अनुवाद-देवा: = देवताओं ने। यज्ञेन = सृष्टि यज्ञ से पुन:। यज्ञम् = सृष्टि यज्ञ का। अयजन्त = यजन किया (उसमें)। तानि धर्माणि = वे ही सृष्टि के नियम या विधान। प्रथमानि = सबसे मुख्य। आसन् = थे। महिमान: = महिमा को प्राप्त करने वाले। ते = उन ऋषियों ने। नाकम् = स्वर्ग लोक को। सचन्त = प्राप्त किया। यत्र = जहाँ पर। पूर्वे = प्राचीनकाल के। साध्या: = सृष्टि को साधने वाले। देवा: = देवता। सन्ति = विद्यमान हैं।

व्याख्या- प्रजापति के प्राणरूप देवताओं ने जब संकल्परूप मानसिक यज्ञ से, सृष्टियज्ञ का विस्तार किया, तब वे ही सृष्टि उत्पत्ति के नियम अथवा विधान सबसे मुख्य हुए, जिनको सर्वप्रथम निर्धारित किया गया। महिमा को प्राप्त करने वाले उन देवताओं ने उस दिव्य स्वर्ग को प्राप्त कर लिया, जहाँ पुरातन काल के सिद्धि अर्थात् सफलता को प्राप्त करने वाले देवगण विद्यमान हैं।

1.4 उत्तरनारायण सूक्त

शुक्ल यजुर्वेद में पुरुष सूक्त के सोलह मन्त्रों के अनन्तर नारायण सूक्त के छः मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। अतः यह सूक्त पुरुष सूक्त के बाद (उत्तर) में होने के कारण इस सूक्त को उत्तर नारायण सूक्त भी कहा जाता है। इस सूक्त में परम पुरुष का स्वरूप, उसकी प्राप्ति की विधि एवं परम पुरुष के ज्ञान का फल का बोध होता है। इसमें आदि पुरुष (महाविष्णु, विराट् पुरुष) की महिमा की अभिव्यक्ती की गई है। इस सूक्त में कहा गया है कि इन मन्त्र की सिद्धि से सभी देवता साधक के वशीभूत हो जाते हैं। इस सूक्त का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

सूक्त : यजुर्वेद 31.17-22

देवता : आदित्य-पुरुष

छन्द : भूरिगार्षी त्रिष्टुपु, निच्यृदार्षी त्रिष्टुप् एवं आर्ष्य अनुष्टुप्

ऋषि : नारायण

कुल मन्त्र : 06

परमपुरुष का सर्वव्यापकत्व -

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥1॥

अन्वय :- अग्रे विश्वकर्मणः पृथिव्यै अद्यः रसात् च संभृतः त्वष्टा तस्य रूपं विदधत् एति अग्रे मर्त्यस्य तत् देवत्वं आजानम्।

अनुवाद - प्रारम्भ में सब कर्म करनेवाला जो पुरुषरूप परमात्मा है, उसके प्रयत्नसे पृथिवी के ऊपर के जलरूप रससे परिपुष्ट हुआ। विश्व निर्माण का करनेवाला वह पुरुष उस विश्वका रूप बनाता हुआ आगे बढता है। पहिलेसे मर्त्य को वही देवत्व देता है ऐसा मैं जानता हूँ।

व्याख्या- विराट् पुरुष ने पृथिवी, जल आदि पहिले बनाये और उस रससे आगेकी सृष्टि बनायी। त्वष्टा रूप बनाता है। विश्वकर्मा और त्वष्टा परमात्माके ही नाम उसके अनेक कर्म करनेके कारण बने है। उपासकको देवत्व प्राप्त करने के लिये विश्वकर्मा और त्वष्टाके गुणोंका ध्यान करना चाहिये। उसके गुण अपने अन्दर धारण करनेसे उपासकको देवत्व प्राप्त हो सकता है। पृथ्वी आदि की सृष्टि के लिये अपने प्रेम के कारण वह पुरुष जल आदि से परिपूर्ण होकर पूर्व ही छा गया। उस पुरुष के रूप को धारण करता हुआ सूर्य उदित होता है, जिसका मनुष्य के लिये प्रधान देवत्व है।

आत्मज्ञान द्वारा परम पुरुष की प्राप्ति-

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥2॥

अन्वय :- तमसः परस्तात् आदित्यवर्णं एतं महान्तं पुरुष अहं वेद। तं एव विदित्वा मृत्युं अतिएति अयनाय अन्यः पन्थाः न विद्यते।

अनुवाद :- अन्धकार से परे आदित्यके समान प्रकाशमान इस बडे पुरुषको मैं जानता हूँ। इस

पुरुषको जाननेसे ही उपासक मृत्युके परे जाता है मृत्युके परे जानेके लिये दूसरा मार्ग नहीं है।

व्याख्या :- मैं अज्ञानान्धकार से परे आदित्य-प्रतीकात्मक उस सर्वोत्कृष्ट पुरुष को जानता हूँ। मात्र उसे जानकर ही मृत्यु का अतिक्रमण होता है। शरण के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं।

आत्मचिन्तन का महत्त्व -

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।

तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥3॥

अन्वय :- प्रजापतिः गर्भे अन्तः चरति अजायमानः बहुधा विजायते तस्य योनिं धीराः परि पश्यन्ति तस्मिन् ह विश्वा भुवनानि तस्थुः॥

अनुवाद :- समस्त प्रजाओं का पति (स्वामी) पुरुष सब पदार्थों के अन्तर विचरता है. रहता है, वह कभी जन्म न लेनेवाला होकर भी अनेक प्रकारसे प्रकट होता है। उसके मूल स्वरूप को ज्ञानीजन देखते हैं, उसीमें सब भुवन (लोक) रह रहे हैं।

व्याख्या :- वह परमात्मा आभ्यन्तरमें विराजमान है। उत्पन्न न होनेवाला होकर भी नाना प्रकार से उत्पन्न होता है। संयमी पुरुष ही उसके स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं। सम्पूर्ण भूत उसी में सन्निविष्ट हैं।

परम पुरुष की महानता -

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मे॥4॥

अन्वय :- यः देवेभ्यः आतपति यः देवानां पुरोहितः यः देवेभ्यः पूर्वः जातः ब्राह्मये रुचाय नमः।

अनुवाद :- जो देवों के लिए प्रकाशित होता है, जो सब देवोंका अग्रेसर है, जो सब देवोंके पूर्वकालसे ही प्रकट हुआ है, उस ब्राह्म तेजको मेरा नमस्कार हो।

व्याख्या :- जो देवताओं के लिये सूर्य रूप से प्रकाशित होता है, जो देवताओं का कार्य साधन करने वाला है और जो देवताओं से पूर्व स्वयं भूत है, उस देदीप्यमान ब्रह्म को नमस्कार है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि तेज जिसके प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे है, जो सब देवोंके आगे अपनी शक्तिके कारण रहता है, जो सब देवोंके उत्पन्न होनेके पूर्वकालसे प्रकाशित हो रहा है, वह ब्रह्म प्रकाश है, उसके लिये मेरा नमस्कार हो।

ब्रह्मज्ञान का फल -

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन् वशे॥5॥

अन्वय :- ब्राह्मं रुचं जनयन्तः देवाः अग्रे तत् अब्रुवन् यः ब्राह्मणः तु एवं विद्यात् तस्य वशे देवाः असन्।

अनुवाद :-ब्रह्मज्ञान प्रकट करते हुए देवों ने प्रारम्भमे ही ऐसा कहा था, कि जो ज्ञानी इस ब्रह्म को इस तरह जानता है, उसके वशमें सब देव- सब इन्द्रियगण- रहते हैं।

व्याख्या :-उस शोभन ब्रह्म को प्रथम प्रकट करते हुए देवता बोले, "जो ब्राह्मण तुम्हें इस स्वरूप में जाने, देवता उसके वश में हों"। ब्रह्मज्ञान प्रकट करनेवाले ज्ञानियोंने पहिलेसे ही ऐसा कहकर रसा है कि, जो ज्ञानी इस ब्रह्मपुरुषको यथावत् जानता है, उसके वशमें सब इन्द्रिगण- सब देव- सब देवतांश रहते हैं | ब्रह्मज्ञान जिसके समझमें यथावत् आ गया है, उसके आधीन उसके सब इन्द्रिय रहते है। इन्द्रियस्थानोंमें देवताएं रहती है, वे सब देव उसके आधीन रहते हैं। उसकी इन्द्रियां उसकी इच्छाके बाहर मनमाना दुराचार नहीं करती। सदा उसके आधीन रहती है।

परम पुरुष रूप ब्रह्म का स्वरूप -

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे,
नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण
सर्वलोकं म इषाण ॥6॥

अन्वय:- (हे ईश्वर!) श्रीः च लक्ष्मी च ते पत्न्यौ, पार्श्वे अहोरात्रे, नक्षत्राणि रूपं अश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन् इषाण, अमुं मे इषाण सर्वलोकं मे इषाण ॥6॥

अनुवाद :- हे विराट् पुरुष! सम्पत्ति और शोभा आपकी पत्नियाँ हैं। तेरी दोनों भुजाएं दिन और रात हैं। नक्षत्र तेरा रूप है। द्यु और पृथिवी लोक तेरा मुख है। इच्छा हुई तो मुझे किसकी इच्छा हो? इसकी मैं इच्छा करता हूँ कि सब लोकों की मुझे प्राप्ति हो।

व्याख्या :-सम्पत्ति और शोभा ये विराट् पुरुष की सहचारिणियाँ हैं अर्थात् समृद्धि और सौन्दर्य तुम्हारी पत्नी के रूप में हैं। उसके साथ ये दोनों रहती है। दिन और रात्रि उनकी दो बाजूएं हैं, ईश्वर की कालस्वरूप की भुजाएं हैं। अर्थात् दिन तथा रात तुम्हारे अगल-बगल हैं। नक्षत्र उसका प्रकाशस्वरूप है।अर्थात् अनन्त नक्षत्र तुम्हारे रूप हैं। पृथिवी और धुलोक यह उसके मुख है। द्यावा-पृथ्वी तुम्हारे मुख स्थानीय हैं। इस प्रकार ईश्वर में मै रह रहा हूँ। वह मेरे अन्दर, बाहर, चारों ओर है। उससे मैं मांगता हूँ कि मुझे सर्व श्रेष्ठ लोक प्राप्त हो। मेरे ऐसे शुभ कर्म हों कि जिनके बलसे मुझे उत्तम लोक प्राप्त हो। इच्छा करते समय परलोक की इच्छा करो। मैं सर्वलोकात्मक हो जाऊँ-ऐसी इच्छा करो, ऐसी इच्छा करो।

1.5 राष्ट्रगान सूक्त

सामान्य परिचय :- राष्ट्रगान सूक्त शुक्ल यजुर्वेद के 22 वें अध्याय में मन्त्र संख्या 22 में वर्णित एक प्रार्थना है जिसे वैदिक कालीन राष्ट्रगान कहा जाता है। यह प्रार्थना यज्ञों में स्वस्ति मंगल के रूप में गाई जाती थी। इसमें राष्ट्र के विभिन्न वर्गों के सुख-समृद्धि की कामना की गयी है। यह यजुर्वेदीय राष्ट्र के कल्याण सम्बन्धी प्रार्थना है। वैदिक राष्ट्र चिन्तन का यह एक उदाहरण है। इस सूक्त में कहा गया है कि देश के सभी लोग सुखी और समृद्ध हों। इस सूक्त किसी राष्ट्र की आदर्श प्रशासनिक व्यवस्था का प्रारूप प्रस्तुत किया गया है। इस सूक्त में राष्ट्र के जीवन को शब्दगत रूप दिया गया है। राष्ट्र शब्द देश के अर्थ में प्रचलित हो गया है, पर मूल रूप में वह एक प्रशासनिक व्यवस्था है। यह सूक्त परिभाषित करता है कि राष्ट्र क्या है? यह सूक्त इस पृथ्वी के सभी राष्ट्रों और उनके सभी लोगों के लिए समान रूप से लागू हो सकता है। यह सूक्त मार्गदर्शन देता है कि हम लोग के राष्ट्र को कैसे परिभाषित कर सकते हैं? क्या कोई देश या राष्ट्र क्षेत्रीय आधार पर, भाषाई आधार पर या सांस्कृतिक आधार पर या लोगों की

जाति आधार पर राष्ट्र कहा जाता है? आज लोग क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, भाषाई, जातीयता संबद्धता के आधार पर 'पृथक् राष्ट्र' की मांग की जा रही है। परन्तु इस सूक्त में उक्त विचार के विपरीत एक राष्ट्र को "योग-क्षेम" द्वारा परिभाषित किया जा रहा है जिसका अर्थ है अपने सभी लोगों का समान रूप से कल्याण। जिसमें लोग जो एक साथ जुड़ते हैं और अपने संयुक्त कल्याण के लिए काम करते हैं, वही लोगों के लिए राष्ट्र अभिधान से विभूषित होता है। इस सूक्त का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

सूक्त : शुक्लयजुर्वेद 22-22

देवता : लिंगोक्त राष्ट्र

छन्द : स्वराट् उत्कृति

ऋषि : त्रसदस्यु

कुल मन्त्र : 01

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो बह्मवर्चसी जायताम्, आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यः अति व्याधी महारथो जायताम्

दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः, पुरंध्रिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो, युवाअस्य यजमानस्य वीरो जायतां

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ,योगक्षेमो नः कल्पताम् (यजुर्वेद 22/22)

अनुवाद :-हे ब्रह्मन्-हे परमेश्वर राष्ट्रे- हमारे देश में,ब्रह्मवर्चसी-वेदविद्या से प्रकाश को प्राप्त, ब्राह्मणः- विद्वान्, आ जायताम्-सब प्रकार से उत्पन्न हो। (हमारे देश में)इषव्यः-बाण चलाने में उत्तम गुणवान्, अतिव्याधी-अतीव शत्रुओं को व्यधने अर्थात् दण्द देने का स्वभाव रखने वाला, महारथः-कि जिसके बडे बडे रथ और अत्यन्त बली वीर है ऐसा, शूरः-निर्भय, राजन्याः-राजा, आ जायताम्-सब प्रकार से उत्पन्न हो। (हमारे देश में) दोग्ध्री-कामना अथवा दूध से पूर्ण करनेवालीत् धेनुः-वाणी वा गौ, वोढा-भार ले जाने में समर्थ, अनड्वान्-बडा बलवान् बैल, आशुः-शीघ्र चलने वाला, सप्तिः-घोडा हो।(हमारे देश में) पुरन्धिः-जो बहुत व्यवहारों को धारण करती है वह, योषा-स्त्री, अस्य यजमानस्य- जो यह विद्वानों का सत्कार करता वा सुखों की संगति करता वा सुखों को देता है, इस राजा के राज्य में, वीरः-विशेष ज्ञानवान् शत्रुओं को हटाने वाला पुरुष उत्पन्न हो। (हमारे देश में) रथेष्ठाः-तथा रथ पर स्थित होने और, जिष्णूः-शत्रुओं को जीतनेवाला, सभेयः-सभा में उत्तम सभ्य, युवा-जवान पुरुष, आ जायताम्- उत्पन्न हो। (हमारे देश में) नः-हम लोगों के लिए , निकामे निकामे-निश्चययुक्त काम काम में अर्थात् जिस जिस काम के लिए प्रयत्न करें उस उस काम में, पर्जन्यः-मेघ, वर्षतु-वर्षे। (हमारे देश में) ओषधयः-ओषधि, फलवत्यः-बहुत उत्तम फलोवाली, नः-हमारे लिए, पच्यन्ताम्-पकें। (हमारे देश में) नः-हमारा, योगक्षेमः-अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति लक्षणों वाले योग की रक्षा अर्थात् हमारे निर्वाह के योग्य पदार्थों की प्राप्ति, कल्पताम् = उत्तम प्रकार से होती रहे।

व्याख्या :- इस मन्त्र में राष्ट्र शब्द सप्तमी विभक्ति में है। जिसमें ['आधारोऽधिकरणम्' पा.1/4/45] आधार= सहारा बनने वाले का संकेत है। अतः उसी का यह सारा अंग-उपांग सहित वर्णन है। यहाँ राष्ट्र का अर्थ (जो कि सीमित रूप में लें तो) होगा- अच्छी प्रशासनिक व्यवस्था, ईकाई। प्रत्येक व्यक्ति अपनी और अपनों के जान-माल की सुरक्षा चाहता है। वहीं

सभी तरह की प्रगतियाँ होती हैं। है। राष्ट्र= (प्रशासनिक व्यवस्था) का विपरीत शब्द है अराजकता= राज्य, राजा का अभाव अर्थात् जहाँ जान-माल असुरक्षित हो, जहाँ व्यवस्था का अभाव हो, सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जहाँ। ऐसे सुसंगठित राष्ट्र में किस प्रकार के व्यक्तियों एवं व्यवस्थाओं की आवश्यक्ता है? इस मन्त्र यह सब निर्दिष्ट किया गया है। किसी भी राष्ट्र के समग्र कल्याण (योगक्षेम) सुनिश्चित करने वाले के लिए किसी भी राष्ट्र में आवश्यकता है -

ज्ञानात्मक योग्यता (Knowledge) – यहाँ ब्राह्मण से आशय है- विद्वान्। ब्राह्मण वे हैं जो उस विकास को आगे बढ़ा रहे हैं। वे हर क्षेत्र में ज्ञान प्रदाता हैं जो समाज को उच्च और उच्च स्तर की बुद्धि के लिए विकसित करने में मदद करते हैं। वे वैज्ञानिक, शोधकर्ता, प्रौद्योगिकीविद, शिक्षक आदि होते हैं। ज्ञान प्रदाता समाज को हमेशा विकसित ज्ञान और प्रौद्योगिकियां प्रदान करते हैं। विद्वानों के होने पर देश में ज्ञानात्मक योग्यता का विकास होता है अतः इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि "हे ईश्वर! हमारे राष्ट्र में ब्रह्म तेज से तेजस्वी ब्राह्मण (अर्थात् जो ब्रह्मज्ञान को पाने का उत्सुक हो, ये जातिवाचक शब्द नहीं) उत्पन्न हो।

प्रशासनिक योग्यता (Administrative skills) – इस मन्त्र में राजन्य शब्द आया है। राजन्य का अर्थ है प्रशासक। प्रशासक विद्वानों द्वारा दिए गए ज्ञान को फैलाने और लोगों द्वारा इस ज्ञान के शोषण को सुविधाजनक बनाने के लिए समाज का मार्गदर्शन करते हैं। राजा अतीत के राजन्य थे। वर्तमान में राजन्य राजनीतिक दल, नौकरशाही, न्यायपालिका और संसद हैं। वे ही देश का संचालन कर रहे हैं। इनमें प्रशासनिक कौशल होना आवश्यक है। अतः इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि "हे ईश्वर! हमारे राष्ट्र में शूरवीरो, धनुर्धारी, शत्रुओं को परास्त करनेवाले महारथी क्षत्रिय (फिर से, यह जातिवाचक नहीं, जो भी राष्ट्र की रक्षा करने को तत्पर हो) उत्पन्न हो।

भौतिक विकास (Material Develeopment) - राष्ट्र के नागरिकों के लिए भौतिक आवश्यकताएं रहती हैं। इस से ऋषि ने मुंह नहीं मोडा है। हां, यह सत्य है कि भौतिक आवश्यकताओ में रचे बसे रहना नहीं चाहिए। लेकिन कुछ तौ भौतिक आवश्यकताएं पूरी होनी ही चाहिए। इसीलिए ऋषि कहते हैं कि हमारे राष्ट्र में भरपूर दूध देनेवाली गायें हो। कृषि भी भौतिक आवश्यकता है और प्राचीन समय में कृषि बैल के बिना कल्पित नहीं थी। इसी लिए बलवान बैल की कामना की गई है। वाहन व्यवहार भी अनिवार्य है। इस लिए तेज गति से दौड़ सकें एसे घोडे भी मांगे गये है।

देश के लिए काम करने के लिए युवा आबादी (Youthfulness) - एक राष्ट्र को बहुत अधिक युवा आबादी की आवश्यकता होती है। युवा आबादी सिर्फ उम्र में ही नहीं स्वास्थ्य के मामले में भी है। युवा आबादी जो समाज की सेवा कर सकती है। युवा (शारीरिक, मानसिक रूप से) अपने कल्याण के साथ-साथ वृद्ध, विकलांग और अन्य जो योगदान नहीं कर सकते, उनके कल्याण के लिए समाज में योगदान करते हैं।

राष्ट्र के युवा स्त्री पुरुष कैसे हों? उसका भी इस मन्त्र में निर्देश किया गया है। तब व्यर्थ हो जाती हैं, जब देश की नारी कुल का या परिवार का चतुराई से पोषण न करे। परिवार राष्ट्र की सबसे छोटी इकाई है और उसका पालन, पोषण रक्षण, संवर्द्धन सब नारी पर आश्रित है। ऋषि ने पुरंध्रिर्योषा कहा है जिसका अर्थ है जो बहुत व्यवहारों को धारण करती है वह। यज्ञ परम्परा के निर्वाहक यजमान होते हैं। वे तभी सफल होंगे जब उनके घर आंगन की शोभा वीर बालक से बढ़ती रहे। यह बालक सभा में बैठने वाला हो और सभा का व्यवहार, आचार और शील

जानने समझने में कुशल हो। युवा के जिष्णु, रथेष्ठा, सभेय और वीर रूप से चार विशेषण हैं। जो युवक रथी बने, सैनिक बने उसमें देश के लिए जीतने या विजय प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा हो, तभी वह विजयी हो सकेगा।

उद्यमिता कौशल (Entrepreneurship)

यजमाना का अर्थ है एक उद्यमी। जो समाज की जरूरतों को पूरा करने वाले लोगों के संस्थान बनाता है। यजमान का अर्थ है जिसने यज्ञ की स्थापना की है। व्यवसाय जैसी व्यावसायिक संस्था भी वास्तव में यज्ञ तरह ही हैं। यजमान वे हैं जो ऐसी संस्थाओं के निर्माण के लिए अपना समय, धन, भोग आदि दान देते हैं। इसलिए उन्हें यजमान कहा गया है।

ऎसे यजमान के कल्याण की कामना भी इस मन्त्र में की गई है। उद्यमी लंबे समय तक चलने वाले संस्थानों का निर्माण करते हैं जो प्रशासकों द्वारा प्रदान किए गए ज्ञान और प्रशासनिक सुविधाओं / मार्गदर्शन का उपयोग करके लोगों को भोजन, पानी और अन्य सुविधाएं प्रदान करते हैं।

राष्ट्र की समृद्धि (Prosperity of the Nation) – जल एवं फसल दोनों देश की समृद्धि से जुडे हुए हैं। हमें एक समाज में समृद्ध होने के लिए बारिश, वनस्पति और जानवरों की भी आवश्यकता है क्योंकि वे हर समय मनुष्य की समृद्धि का आधार बनते हैं। इस मन्त्र राष्ट्र की समृद्धि करते हुए कहा गया है कि पर्जन्य:न:कामे-कामे नि वर्षतु- हम जहाँ-जहाँ, जब-जब चाहें, वहाँ-वहाँ तब-तब बादल (जल) बरसे। यहाँ जहाँ इच्छा के अनुरूप बरसने की प्रार्थना है। वहाँ इससे यह सन्देश भी है, कि हम अपनी इच्छा, सुविधा के अनुसार जल की व्यवस्था करें। जैसे कि आजकल आधुनिक भवनों में जल की योजना दृगोचर उपलब्ध होती है। न: ओषधय: फलवत्य: पच्यन्ताम्- जल की व्यवस्था हो जाने पर हमारी फसलें दानों से भरकर पकें। प्राचीन संस्कृतभाषा में ओषधि शब्द जड़ी-बूटियों की अपेक्षा अनाजों- जौ, धान आदि के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे कि ओषधय: फलपाकान्ता: मनुस्मृति 1/46, चरक सूत्र 1/73 में आया है अर्थात् फल पकने के साथ जिस का पौधा, बूटा सुख जाए। वैसे फलवत्य: विशेषण और पच्यन्ताम् क्रिया जहाँ आई हुई हैं। जो कि इस अर्थ को पुष्ट करती हैं क्योंकि फसलें इन दोनों स्थितियों में अधिक सार्थक होती है।

योगक्षेमो न: कल्पताम्- मन्त्र निर्दिष्ट सारी व्यवस्थाएं चरितार्थ हो जाने पर हम राष्ट्रवासियों को योग= अप्राप्त की प्राप्ति और क्षेम प्राप्त का संरक्षण रूपी अर्थशास्त्र में प्रतिपादित भौतिक विज्ञान तभी सामने आता है। कल्पन्ताम् क्रिया कायाकल्प की परिभाषा को चरितार्थ करती है, स्मरण दिलाती है। जिस देश में पारदर्शी ज्ञान की ऊर्जा समृद्ध हो, सीमा पर प्रहरी सचेष्ट और लक्ष्यनिष्ठ हों, समाज का पालन-पोषण करने वाले धर्मशील हों, स्त्रियां परिवार की प्रतिष्ठा का प्रतीक हों, गौएं देवर्षि पितृ कार्यो में सक्षम हों, युवाजन निर्भयता पूर्वक अपनी शक्ति का देशहित में विनियोग करते रहें, अवर्षा का जहाँ प्रभाव न हो, कृषि फलवती हो, औषधियां परिणामकारिणी हों, वही राष्ट्र समृद्ध और समर्थ हो सकेगा

1.6 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने शिवसंकल्प सूक्त, पुरुष सूक्त, उत्तरनारायण सूक्त एवं राष्ट्रगान सूक्त नामक चार सूक्तों का अध्ययन किया। शिवसंकल्पसूक्त का सम्बन्ध भी मन से है।हमारा

मन इन इन्द्रियों में ज्ञानरूपी प्रकाश बनकर इन तथ्यों का विश्लेषण कर व उनको निर्देश प्रदान कर हमारे विचारों के रुप में हमें यथोचित कर्म करने हेतु उत्प्रेरित करता है। इस प्रकार हमारा मन जितना शुभसंकल्प युक्त होता है, हमारा जीवन व इसका अभीष्ट कर्म उतना ही शुभ, सुन्दर, पवित्र और समग्र होता है। इस सूक्त का महत्त्व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से है। पुरुष सूक्त के अनुसार ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाला चेतन तत्त्व पुरुष है, वही व्यष्टि रूप से पृथक्-पृथक् प्रत्येक पिण्ड को व्याप्त करता है। इस सूक्त में अत्यन्त ही तार्किक एवं सम्यक् विधि से चेतन तत्त्व विराट् पुरुष से ब्रह्माण्ड का आविर्भाव दर्शाया गया है। आध्यात्मिक तथा दार्शनिक दृष्टि से इस सूक्त का बड़ा महत्त्व है। यह सूक्त सृष्टिविज्ञान की दृष्टि से भी अति महत्त्व का है। उत्तरनारायण सूक्त सूक्त में परम पुरुष का स्वरूप, उसकी प्राप्ति की विधि एवं परम पुरुष के ज्ञान का फल का बोध होता है। इसमें आदि पुरुष (महाविष्णु, विराट् पुरुष) की महिमा की अभिव्यक्ती की गई है। राष्ट्रगान सूक्त का राष्ट्रीय महत्त्व है। कोई देश या राष्ट्र क्षेत्रीय आधार पर, भाषाई आधार पर या सांस्कृतिक आधार पर या लोगों की जाति आधार पर राष्ट्र नहीं कहा जा सकता है। आज क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, भाषाई, जातीयता संबद्धता के आधार पर 'पृथक् राष्ट्र' की मांग की जा रही है जो अनुचित है। परन्तु इस सूक्त में उक्त विचार के विपरीत एक राष्ट्र को "योग-क्षेम" द्वारा परिभाषित किया जा किया गया है जिसका अर्थ है अपने सभी लोगों का समान रूप से कल्याण। अतः यह सूक्त देश की एकता,अखण्डता एवं समृद्धि की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

1.7 शब्दावली

1. **यजुष् -**'गद्यात्मको यजुः' अर्थात् गद्य में रचे गये मन्त्रों को यजुष् कहते हैं।
2. **शिव संकल्प -** शिव संकल्प से तात्पर्य शुभ संकल्प, श्रेष्ठ एवं कल्याणकारी संकल्प से है। इसमें प्रत्येक मन्त्र के अन्त में 'तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु' (मेरा मन शुभ विचारों से युक्त हो) यह सुभाषित दिया गया है।
3. **कॉस्मोलॉजी -** सृष्टि (ब्रह्माण्ड)विज्ञान अथवा कॉस्मोलॉजी, आधुनिक विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें सृष्टि के निर्माण एवं विकास से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है।
4. **पुरुष** – यास्क के अनुसार पुरुष: पुरिषय: पुरिषाद: पूरयतेर्वा भी इस तथ्य की पुष्टि करती है अर्थात् ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाला चेतन तत्त्व पुरुष है, वही व्यष्टि रूप से पृथक्-पृथक् प्रत्येक पिण्ड को व्याप्त करता है।
5. **पार्श्व** – उत्तरनारायण सूक्त के अनुसार दिन और रात्रि उनकी दो बाजूएं हैं, ईश्वर की कालस्वरूप की भुजाएं हैं। अर्थात् दिन तथा रात तुम्हारे अगल-बगल हैं।
6. **योगक्षेम -**अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति लक्षणों वाले योग की रक्षा अर्थात् हमारे निर्वाह के योग्य पदार्थों की प्राप्ति।
7. **पुरंध्रिर्योषा -** ऋषि ने ऐसी स्त्री पुरंध्रिर्योषा कहा है जो बहुत व्यवहारों को धारण करती है वह।
8. **ब्रह्मवर्चस् -** वेदविद्या से प्रकाश को प्राप्त विद्वान्। राष्ट्रगान सूक्त में प्रार्थना की है कि "हे ईश्वर! हमारे राष्ट्र में ब्रह्म तेज से तेजस्वी ब्राह्मण (अर्थात् जो ब्रह्मज्ञान को पाने का उत्सुक हो, ये जातिवाचक शब्द नहीं) उत्पन्न हो।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, यजुर्वेद का सुबोधभाष्य, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 2010
- शर्मा जयदेव, यजुर्वेद सुबोध हिन्दी भाष्य, देव प्रकाशन, दिल्ली, 2014.
- उपाध्याय रामानुज, शुक्ल यजुर्वेद- माध्यन्दिन संहिता, श्रीलाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली,2018
- चौबे, ब्रजबिहारी, शुक्लयजुर्वेद, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005.
- पाण्डेय, देवेन्द्रनाथ, वैदिक सूक्त संग्रह (सायणभाष्य सहित), जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2006.
- वैदिक सूक्त संग्रह, गीताप्रेस गोरखपुर, 2013

1.9 बोध प्रश्न

1. शिवसंकल्प सूक्त के आधार पर मन के शुभसंकल्प से युक्त करने विधि एवं परिणाम की समीक्षा कीजिए?
2. सृष्टिविज्ञान की दृष्टि से पुरुष सूक्त का विश्लेषण किजिए?
3. उत्तरनारायण सूक्त के आधार पर विराट् पुरुष के ध्यान की पद्धति एवं फल का विवेचन किजिए?
4. राष्ट्रगान सूक्त के आधार पर वैदिक राष्ट्र चिन्तन पर निबन्ध लिखिए?

इकाई 2 अथर्ववेद : भूमि सूक्त के आधार पर पृथ्वी की वैदिक अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भूमि सूक्त : एक सामान्य परिचय

2.3 भूमि सूक्त के आधार पर पृथ्वी की वैदिक अवधारणा

2.4 पृथ्वी की आधिदैवीय अवधारणा

2.5 पृथ्वी की ऐतिहासिक अवधारणा

2.6 वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा

2.7 पृथ्वी की राष्ट्रीय अवधारणा

2.8 पृथ्वी की पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय अवधारणा

2.9 पृथिवी की न्यायिक अवधारणा

2.10 सारांश

2.11 शब्दावली

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.13 बोध प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

- अथर्वेदीय भूमि सूक्त के मन्त्रों की व्याख्या एवं गूढ ज्ञान प्राप्त कर पायेंगें।
- वैदिक वाङ्मय में पृथ्वी की क्या अवधारणा रही है? इस तथ्य को जान पायेंगें।
- मातृभूमि एवं उसके निवासी के मध्य किस प्रकार के सम्बन्ध होने चाहिए? इसका विश्लेषण कर पायेंगें।
- वेदों में वर्णित पर्यावरणीय विचारों की समीक्षा कर पायेंगें।
- पृथ्वी के आधिभौतिक के साथ साथ दिव्य एवं आध्यात्मिक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर पायेंगें।

2.1 प्रस्तावना

वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। वेद शब्द ज्ञानार्थक 'विद्' धातु (विद ज्ञाने) से 'घञ् (अ) प्रत्यय करने पर बनता है, इसका अर्थ है ज्ञान। अतः 'वेद' शब्द का अर्थ होता है ज्ञान की राशि

या ज्ञान का संग्रह ग्रन्थ। वैदिक वाङ्मय क्रमशः संहिता. ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् के रूप में विभक्त है। अथर्ववेद एक संहिता है। संहिता अर्थात् मन्त्रों का संकलन। ऋक्, यजुष्, साम एवं अथर्व ये चार संहिताएं है इनमें अथर्व संहिता अन्यतम है, लौकिक विषयों से सम्बद्ध होने से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का स्पष्ट चित्रण अथर्ववेद में हुआ है। इसी को लक्ष्य करके मैक्डोनल ने कहा है कि ''सभ्यता के इतिवृत के अध्ययन के लिये ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद में उपलभ्यमान सामग्री कहीं अधिक रोचक तथा महत्त्वपूर्ण है।'' अथर्ववेद में पारलौकिक फल-निष्पादक मंत्रो के साथ-साथ लौकिक अथवा ऐहिक फल निष्पादक मन्त्रों का भी संग्रह है। आचार्य सायण ने भी अपनी अथर्ववेद भाष्य भूमिका में लिखा है कि —

**''व्याख्याय वेदत्रितयमामुष्मिकफलप्रदम्।
ऐहिकामुष्मिक फलं चतुर्थं व्याचिकीर्षति ॥''**[1]

वस्तुत: मानव का जीवन दु:खों से परिपूर्ण है तथा वह उन दु:खों को दूर करने में लगा रहता है। अथर्ववेद में उन समस्त दु:खों को दूर करने एवं सुखमय जीवन व्यतीत करने के उपायों का निर्देशन है, अतएव अन्य संहिताओं की अपेक्षा अथर्ववेद की लोकप्रियता सर्वाधिक रही है तथा इसके अध्ययन को आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण माना गया है। पतंजलि ने महाभाष्य में अथर्ववेद की नौ शाखाओं का वर्णन किया है- नवधाथर्वणो वेदः। ये शाखाएँ हैं- पिप्पलाद, स्तौद, जाजल, मौद, ब्रह्मवेद, शौनकीय, जलद, देवदर्श एवं चारण वैद्य। अर्वाचीन काल में इन नौ शाखाओं में से मात्र दो शाखाएँ ही उपलब्ध होती है। (1) शौनक (2) पिप्पलाद।

अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का प्रथम सूक्त पृथ्वी सूक्त है जिसके कुल 63 मन्त्र हैं। इस सूक्त में पृथ्वी के समस्त चर-अचर के प्रति ऋषि की चिन्तना मुखरित हुई है। पृथ्वी सूक्त में प्रकृति और पर्यावरण के सम्बन्ध में अद्वितीय ज्ञान है। पृथ्वी के पर्यावरण, जीव जगत, चर अचर के सम्बन्धों की जो वैज्ञानिकता इन मन्त्रों में मुखरित हुई है वो आज अपने रचनाकाल के समय से ज्यादा प्रासंगिक प्रतीत होती है। प्रस्तुत इकाई में हम अथर्ववेद के भूमि सूक्त के आधार पर पृथ्वी के स्वरूप का विश्लेषण करने जा रहे हैं।

2.2 भूमि सूक्त : एक सामान्य परिचय

परिचय :- इस सूक्त का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :-

सूक्त :- अथर्ववेद 12 वाँ काण्ड 01 सूक्त

देवता :- भूमि

छन्द :- इस सूक्त में त्रिष्टुप्, जगती, पंक्ति, विराट्, शक्वरी, बृहती, उष्णिक्, अनुष्टुप एवं गायत्री छन्द प्रयुक्त हुए हैं

ऋषि : - अथर्वन् (अथर्वा)

कुल मन्त्र :- 63

अथर्ववेद को इस सूक्त को पृथिवी सूक्त, भूमि सूक्त तथा मातृ सूक्त भी कहा जाता है। भूमि सूक्त के माध्यम से ऋषि ने पृथ्वी के आदिभौतिक और आदिदैविक दोनों रूपों का स्तवन किया है।

[1] गौड,पं0 रामस्वरूप, अथर्ववेद-सायणभाष्य श्लोक सं0 10, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2011, पृ0 03

भूमि सूक्त में वर्णित धर्म और नीति के पालन से राजा प्रजा और प्रत्येक गृहस्थ और मनुष्यमात्र का कल्याण होता है। उक्त सूक्त राष्ट्रिय अवधारणा तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को विकसित, पोषित एवं फलित करने के लिए अत्यन्त उपयोगी सूक्त है। यहाँ सम्पूर्ण पृथ्वी ही माता के रूप में ऋषि को दृष्टिगोचर हुई है, अत: माता की इस महामहिमा को हृदयांगम करके उससे उत्तम वर के लिए प्रार्थना की है। यह सूक्त अथर्ववेद में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, इस सूक्त में पृथ्वी के स्वरूप एवं उसकी उपयोगिता, मातृभूमि के प्रति प्रगाढ़ भक्ति पर विशद् विवेचन किया गया है। वस्तुतः भूमि सूक्त कविता और विज्ञान का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करता है। काव्य में भाव अभिव्यक्ति की प्रमुखता होती है और विज्ञान में प्रत्यक्ष सिद्धि की। विज्ञान में पृथ्वी सौर मण्डल का ग्रह है। पृथ्वी पर समस्त वस्तुएं, खनिज, वनस्पतियां और जल पृथ्वी का भाग है। तमाम जीव भी इस पृथ्वी पर हैं। इन सबका अध्ययन विज्ञान है। इनसे नेह, स्नेह, प्रीति और राग-विराग भाव जगत् के भाग हैं। सौन्दर्य बोध और भाव प्रवणता में काव्य का जन्म होता है। विज्ञान और भाव प्रवणता अलग-अलग हैं लेकिन अथर्ववेद का भूमि सूक्त विज्ञान और भाव प्रवणता की एकात्म कविता है। भूमि सूक्त में भूसांस्कृतिक प्रीति और प्रत्यक्ष भौतिकवाद का प्रणय है। ऋषि कवि अथर्वा रचित यह सूक्त काव्य सौन्दर्य की अनूठी अभिव्यक्ति है। अमेरिकी विद्वान ब्लूम फील्ड ने इसकी प्रशंसा की है। लिखा है कि "इस सूक्त में अथर्वन् की विशिष्टता है। यह विशेष आकर्षक है। इसमें देवकथात्मक विचार धारणा कम है। मनुष्य, पशु, वनस्पति से पृथ्वी का सम्बन्ध ही प्रमुख है। भूमि सूक्त पृथ्वी की वैदिक अवधारणा का विशद चिन्तन है जिसमें पृथ्वी की आधिभौतिक (Physical) अवधारणा के साथ आधिदैविक (Devotional) अवधारणा का भी वर्णन हुआ है तथा इस क्रम में मातृभूमि के प्रेम (Nationalism) एवं पर्यावरणीय (Environmental) अवधारणाओं का विकास भी हुआ है। हम भूमि सूक्त के आधार पर वैदिक ऋषियों के पृथ्वी सम्बन्धी अवधारणा का अध्ययन प्रस्तुत सूक्त में करने जा रहे हैं।

2.3 भूमि सूक्त के आधार पर पृथ्वी की वैदिक अवधारणा

वैदिक ऋषियों का प्रत्यक्ष संसार से रागात्मक सम्बन्ध है। प्रकृति के गोचर प्रपञ्चों में उनकी रूचि है। वे इन प्रपञ्चों के प्रति जिज्ञासु हैं। यह पृथ्वी जीवन का रंगमंच है। जीवन का प्रवाह और अन्त पृथ्वी पर ही होता है। अतः पृथ्वी से प्रीति स्वाभाविक है। वैदिक वाङ्मय में भूमि को दिव्य एवं पवित्र माना गया है। अथर्ववेद का भूमि सूक्त ऋग्वेद की परम्परा का अनुगमन है। ऋग्वेद में भी भूमि की स्तुति है। ऐसी स्तुति में पृथ्वी का दैवीकरण अधिक नहीं है तथा मानवीकरण भी कम ही है। ऋग्वेद में कहा गया है –

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि।

प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ।।[2] (पृथ्वी पर ऊंचे पहाड़ हैं। वह पर्वतों का भार वहन करती है। यह वन-वनस्पतियों वनों का आधार है।) ऋग्वेद में अन्यत्र कहा गया है –

"उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निरृतेरुपस्थात् ।।[3]

(पृथ्वी माता है। यह जीवन भर भार ढोती है। मृत्यु के बाद भी यह अपनी गोद में रखती है)

[2] ऋग्वेद 5.84.1
[3] ऋग्वेद 10.18.10

इसी परम्परा का अनुगमन करते हुए अथर्ववेद के अधिकांश सूक्तों में सांसारिक यथार्थवाद वर्णित हुआ है। भूमि सूक्त अथर्ववेद के प्रमुख सूक्तों में से एक है। भूमि सूक्त में पृथ्वी के समस्त चर-अचर के प्रति ऋषि की चिन्तना मुखरित हुई है। पृथ्वी सूक्त में प्रकृति और पर्यावरण के सम्बन्ध में अद्वितीय ज्ञान है। पृथ्वी के पर्यावरण, जीव जगत, चर अचर के सम्बन्धों की जो वैज्ञानिकता इन मन्त्रों में मुखरित हुई है। राष्ट्रिय अवधारणा तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को विकसित, पोषित एवं फलित करने के लिए अत्यन्त उपयोगी सूक्त है। इन मन्त्रों के माध्यम से ऋषि ने पृथ्वी के आदिभौतिक और आदिदैविक दोनों रूपों का स्तवन किया है। यहाँ सम्पूर्ण पृथ्वी ही माता के रूप में ऋषि को दृष्टिगोचर हुई है, अतः माता की इस महामहिमा को हृदयांगम करके उससे उत्तम वर के लिए प्रार्थना की है। भूमि सूक्त के आधार पर वैदिक ऋषियों के पृथ्वी सम्बन्धी अवधारणा का अधोलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्टीकरण किया जा रहा है –

2.4 पृथ्वी की आधिदैवीय अवधारणा

भूमि सूक्त में पृथ्वी के दिव्य का स्वरूप की महिमा गायी है। इसमें पृथ्वी को लोकोत्तर देवी के रूप वर्णित किया गया जो अपने साधक को समस्त वस्तुएं प्रदान करने का सामर्थ्य रखती है। इसलिए इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में पृथ्वी को धारण करने वाले दिव्य गुणों की चर्चा की गई है।

2.4.1 पृथ्वी के दिव्य धारक गुण

किसी भी राष्ट्र के निवासियों में किन गुणों की अपेक्षा होती है? इस तथ्य का उल्लेख भूमि सूक्त के प्रथम मन्त्र में है जिनमें पृथ्वी दिव्य अवधारणा पल्लवित हुई है। भूमि को सत्य, तेज, सरलता, दक्षता एवं तप (सहनशीलता), ज्ञान एवं यज्ञ (कर्म की प्रेरणा) ये सभी गुण पृथ्वी को धारण करते हैं। अतः जिस राष्ट्र के निवासियों में ये गुण पाये जाते हैं वे ही इस पृथ्वी को धारण अर्थात् भोगने के योग्य होते हैं –

स॒त्यं बृ॒हदृ॒तमु॒ग्रं दी॒क्षा तपो॒ ब्रह्म॑ य॒ज्ञः पृ॑थि॒वीं धा॑रयन्ति।
सा नो॑ भू॒तस्य॒ भव्य॑स्य॒ पत्न्यु॒रुं लो॒कं पृ॑थि॒वी नः॑ कृणोतु ॥ (भूमि सूक्त 12.1)

(इस पृथ्वी को महान् सत्य (वाचिक सत्य यथार्थ मानसिक सत्य) तेज (पराक्रम), योग्यता, धर्मानुष्ठान, ज्ञान तथा यज्ञ, धारण करते हैं। ये सभी तत्त्व उसके स्वरूप निर्माण में सहायक हैं। वह पृथ्वी समस्त, प्राचीन, अर्वाचीन तथा भविष्य काल के पदार्थों और प्राणियों का पालन करने वाली है। वह हम उपासक जनों के लिए निवासस्थान को विस्तृत और अनुकूल बनावे)

2.4.2 पृथ्वी देवी के रूप में -

जिस प्रकार पुराणों में माँ दुर्गा इत्यादि देवियों की आराधना की गई है उसी प्रकार पृथ्वी की देवी के रूप में उपासना भूमि सूक्त में की गई है। भूमि सूक्त में कहा गया है कि पृथ्वी के नगर, राजभवन, गढ़ आदि देवताओं ने बनाये हैं तथा प्रजापति इसके रक्षक हैं -

यस्या॒ः पुरो॑ दे॒वकृ॑ता॒ः क्षेत्रे॒ यस्या॑ विकु॒र्वते॑।
प्र॒जाप॑तिः पृथि॒वीं वि॒श्वग॑र्भा॒माशा॑माशा॒ं रण्या॑ नः कृणोतु ॥12.1.43॥

अर्थात् (यस्याः) जिसके (पुरः) नगर [राजभवन, गढ़ आदि] (देवकृताः) देवताओं ने बनाये हैं,

(यस्याः) जिसके (क्षेत्रे) खेतों में [मनुष्य] (विकुर्वते) विविध कर्म करते हैं। (प्रजापतिः) प्रजापति [परमेश्वर] (विश्वगर्भाम्) सब के गर्भ (पृथिवीम्) पृथिवी को (आशामाशाम्) दिशा-दिशा में (नः) हमारे लिये (रण्याम्) रमणीय (कृणोतु) करे ॥43॥

भूमि सूक्त में कहा गया है कि न केवल देवताओं ने पृथ्वी का निर्माण किया वरन् उसके महिमा का गुणगान चारों दिशाओं में किया है -

अदो यद्देवि प्रथमाना पुरस्ताद्देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम्।
आ त्वा सुभूतमविशत्तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥1.55॥

अर्थात् (देवि) हे देवी! [उत्तम गुणवाली पृथिवी] (यत्) जब (पुरस्तात्) आगे को (प्रथमाना) फैलती हुई और (देवैः) देवताओं के द्वारा (उक्ता) कही गयी तूने (अदः) उस (महित्वम्) महिमा को (व्यसर्पः) फैलाया। (तदानीम्) तब (सुभूतम्) सुभूति [सुन्दर ऐश्वर्य] ने (त्वा) तुझ में (आ सब ओर से (अविशत्) प्रवेश किया, और (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं को (अकल्पयथाः) तूने समर्थ बनाया ॥55

भूमि सूक्त में पृथ्वी के लिए हर्ष प्रदान करने वाली, देवताओं आगे चलने वाली, संसार की रक्षा करने वाली एवं संसार के कल्याण के लिए पीपल आदि वनस्पतियों और सोमलता अन्न आदि ओषधियों को प्रदान करने वाली आदि दिव्य विशेषण प्रयुक्त हुए है। इन विशेषणों के आधार पर वैदिक ऋषियों पृथ्वी की आधिदैविक अवधारणा का विकास हुआ है -

मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥

(मन्द्रा) हर्षदायिनी, (अग्रेत्वरी) अग्रगामिनी, (भुवनस्य) संसार की (गोपाः) रक्षाकारिणी, (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों [पीपल आदि] और (ओषधीनाम्) ओषधियों [सोमलता अन्न आदि] की (गृभिः) ग्रहण स्थान उस [पृथिवी] ने

ये दिव्य विशेषण हैं जो प्रयुक्त हुए हैं।

2.4.3 रक्षा करने वाली देवी के रूप में पृथ्वी –

यह अपने आप में अद्भुत बात है कि भूमि सूक्त में पृथ्वी केवल मिट्टी पत्थर के रूप में अचेतन तत्त्व के रूप में नहीं है अपितु वह मनुष्यों की रक्षा करने वाली देवी के रूप में विवेचित है। सूक्त में ऋषि प्रार्थना करते हैं कि पृथ्वी देवी जंगल में निवास करने वाले हिंसक जानवरों, पिशाचों, राक्षसों आदि से मनुष्यों की रक्षा करे -

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥ (भूमि सूक्त 12.1.49)

अर्थात् -(ये ते) वे जो (आरण्याः) वन में उत्पन्न हुए (पशवः) पशु (हितः) हितकारी (मृगाः) हरिण आदि और (पुरुषादः) मनुष्यों के खानेवाले (सिंहाः) [हिंसक] सिंह और (व्याघ्राः) [सूँघ कर मारनेवाले] बाघ आदि (वने) वन के बीच (चरन्ति) चरते-फिरते हैं। [उनमें से] (पृथिवि) हे पृथिवि! (उलम्) [उष्ण स्वभाववाले] बनबिलाव, (वृकम्) भेड़िये को और (दुच्छुनाम्) दुष्ट गतिवाली (ऋक्षीकाम्) [हिंसक] रीछिनी आदि, (रक्षः) राक्षस [दुष्ट जीवों] को (इतः) यहाँ पर (अस्मत्) हम से (अप बाधय) हटा दे ॥

2.4.5 शत्रुविनाशिनी देवी के रूप पृथ्वी

वैदिक काल युद्धों का काल भी रहा है। उस समय युद्धों का भी एक महत्त्व था क्योंकि युद्धों से ही राज्य का सीमा का विस्तार होता था। युद्ध के उपरान्त शत्रु रहित राज्य ही शान्त एवं समृद्ध राज्य माना जाता है। इसीलिए भूमि सूक्त में ऋषि प्रार्थना करते हैं कि हे पृथ्वी देवी, हमें असपत्न अर्थात् शत्रुओं से रहित राज्य प्रदान कीजिए। जिस पृथिवी पर मनुष्य ऊँचे, नीचे और मध्यम स्वर से गाते, नाचते और बाजे बजाकर युद्ध करते हैं, वहाँ पर हम लोग शत्रुरहित होकर निर्विघ्न होकर सुख प्राप्त करें –

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥12.1.41॥

अर्थात् (यस्यां भूम्याम्) जिस भूमि पर (व्यैलबाः) विविध प्रकार वाणियों के बोलनेवाले (मर्त्याः) मनुष्य (गायन्ति) गाते हैं और (नृत्यन्ति) नाचते हैं। (यस्यां भूम्याम्) जिस भूमि पर (आक्रन्दः) कोलाहल करनेवाले [योद्धा] (युध्यन्ते) लड़ते हैं, (यस्याम्) जिस पर (दुन्दुभिः) ढोल (वदति) बजता है। (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमारे (सपत्नान्) वैरियों को (प्र णुदताम्) हटा देवे, (पृथिवी) पृथिवी (मा) मुझ को (असपत्नम्) बिना शत्रु (कृणोतु) करे ॥

2.4.6 सुवर्णादि सम्पत्ति एवं धन की प्रदात्री देवी पृथ्वी

मानव जीवन में स्वर्ण, सम्पत्ति एवं धन का महत्त्व अनादि काल से रहा है। इसीलिए भूमि सूक्त में भूमि देवी से सम्पत्ति धन्य इत्यादि की प्रार्थना की गई है। भूमि देवी हिरण्यवक्षा (स्वर्णमय वक्षस्थल वाली) अर्थात् स्वर्ण, रजत आदि धातुओं को तथा वैश्वानर, अग्नि, इन्द्र तथा ऋषभ देवताओं को धारण करने वाली है वह हमें सुवर्णादि सम्पत्ति एवं धन प्रदान करें -

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥1.6॥ (भूमि सूक्त 12.1.6)

अर्थात् जो पृथ्वी समस्त प्राणियों का पोषण करने वाली, स्वर्ण, रजत आदि वस्तुओं की आधारभूता, स्वर्णमय वक्षस्थल वाली तथा जगत् का निवास स्थान है। वह वैश्वानर, अग्नि, इन्द्र तथा ऋषभ देवताओं को धारण करती हुई, भूमि हम उपासकों में विभिन्न धनों को स्थापित करे अथवा हमें विभिन्न प्रकार के धन प्रदान करें।

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे। (भूमि सूक्त 12.1.40)

अर्थात् (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमको (धनम्) वह धन (आ) यथावत् (दिशतु) देवे, (यत्) जिसे (कामयामहे) हम चाहते हैं।

भूमि सूक्त में पृथ्वी की तुलना गाय से की गई है जैसे गौ अल्पमूल्य तृण आदि खाकर गोपाल की चतुराई के अनुसार बहुमूल्य दूध देती है, वैसे ही मनुष्य परिश्रम से अनेक विद्याएँ और अनेक गुण प्राप्त करके पृथिवी पर अपनी योग्यता के अनुसार बहुत प्रकार से धनवान् होवें -

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥1.45॥

ज्ञान ऐश्वर्य एवं पराक्रम की प्रदाता (पृथिवी) पृथिवी, (ध्रुवा) दृढ़ स्वभाववाली, (अनपस्फुरन्ती)

निश्चल (धेनुः इव) गौ के समान, (मे) मेरे लिये (द्रविणस्य) धन की (सहस्रम्) सहस्र (धाराः) धाराएँ (दुहाम्) दुहे ॥

2.4.7 खाद्य प्रदार्थों की प्रदाता

भूमि सूक्त के अनुसार पृथ्वी केवल धन सम्पत्ति सुर्वणादि ही प्रदात्री नहीं है वरन् खाद्य प्रदार्थों को प्रदान करने वाली भी है। जिस पृथिवी की पूर्व, पश्चिम आदि चार दिशाएँ हैं जिसमें किसान विविध अन्नादि पदार्थ उत्पन्न करते थे तथा जो समस्त जड़चेतनात्मक जगत् को "अन्नजल प्रदानादि" द्वारा अनेक प्रकार से धारण करती है। सूक्त में ऋषि पार्थना करते हैं कि पृथ्वी हम उपासकों को "गो आदि पशुओं तथा अन्नादि कृषि पदार्थों" को प्रभूत प्रदान करें -

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥(भूमि सूक्त12.1.10)

अर्थात् जिस पृथ्वी को अश्विनी देवताओं ने मापा था, विष्णु देवता ने जिस पर प्रसिद्ध तीन क्रमण किये थे। शक्तिशाली इन्द्र ने जिसको स्वयं के लिये शत्रुरहित कर दिया था। वही पृथ्वी हम उपासकों के लिए "अन्नादि भोग्य पदार्थ" उसी प्रकार उत्पन्न करें जिस प्रकार माता पुत्र के लिए दुग्ध स्रवित करती है।

इन मन्त्रों में शाकाहारी बनने का सन्देश भी दिया गया है। यह उक्त मन्त्रों में कहा गया है कि भूमि अन्न, जल, दूध देती है। यह पृथ्वी हमारी तेजस्विता बढ़ाए। इस सूक्त मन्त्रों में अन्न, दूध, फल आदि की इच्छा का दोहराया गया है। मांस का कहीं भी उल्लेख नहीं है। इसका एक आशय यह भी हो सकता है कि वैदिकजन अपने प्रिय खाद्य में अन्न, दूध व फल को ही महत्त्व देते थे।

2.5 पृथ्वी की ऐतिहासिक अवधारणा

भूमि सूक्त के अनुसार पृथ्वी की सत्ता अनादि काल से है। देवताओं ने पृथ्वी का निर्माण किया है। भूमि पर तप कर्म करने का सुदीर्घ इतिहास है। अथर्वा इस इतिहास से परिचित हैं। लेकिन उन्हें लोकहित में किए गए कर्म व युद्धों के प्रति ज्यादा लगाव है। अश्व और गाय ऋग्वैदिक समाज में उल्लेखनीय रहे हैं। अथर्ववेद में भी उनकी प्रतिष्ठा है। इस पृथ्वी पर पूर्वजों ने अनेक पराक्रम किये हैं। सत्य के पक्ष में युद्ध भी किये हैं। यहाँ गाय और अश्व रहते हैं। पशु-पक्षी इसी पृथ्वी पर आश्रय पाते हैं। ऐसी पृथ्वी हमारे ज्ञान-विज्ञान व ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाली है। इससे यह प्रेरणा भी मिलती है कि जिस प्रकार पूर्वजों ने विघ्नों को हटाकर कर्तव्य करके ऐश्वर्य पाया है, इसी प्रकार मनुष्य पुरुषार्थ करके ऐश्वर्यवान् और प्रतापवान् होवें ॥ इस मन्त्र में पृथ्वी की ऐतिहासिक अवधारणा विकसित हुई है –

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ (भूमि सूक्त12.1.5)

जिस पृथ्वी पर प्राचीन श्रेष्ठ महापुरुषों ने विचरण किया था, जिस पर देवताओं ने हिंसक असुरों को पराजित किया था। जो पृथ्वी गायों, अश्वों तथा अन्य पक्षी आदि प्राणियों को विशेष सुख देने का स्थान है, वह पृथ्वी हम उपासकों को धनादि ऐश्वर्य तथा ज्ञानादिजन्य तेजस् प्रदान करें।

2.6 वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा

चर एवं अचर जगत् की एकता का आधार भी पृथ्वी ही है क्यों कि पृथ्वी पर अनेक प्राणी है, भिन्न-भिन्न वनपतियाँ व जीव-जन्तु हैं। पृथ्वी पर अनेक रूप हैं। जलों के भी तमाम रूप हैं। फल, अन्न, शाक हैं। मनुष्य भी गुण, इच्छा व कर्म के कारण भिन्न-भिन्न हैं कोई कृषक है कोई शिल्पी आदि है। ऋषि की अभिलाषा है कि भिन्नता के बावजूद सब एक होकर इसी पृथ्वी पर रहते हैं, यह पृथ्वी तमाम औषधियां धारण करती है अतः पृथ्वी हमारी कामना पूरी करे और यशवृद्धि करे –

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ (भूमि सूक्त 12.1.3)

अर्थात् इस भूमि पर समुद्र, महा समुद्र हैं, नदियां हैं, झीले हैं, कूप हैं, अन्न-फल आदि हैं। इससे सभी प्राणी सुखी हैं। कृषक कृषि करते हैं, शिल्पी संगठित शिल्पकर्म करते हैं। यह हमारी पृथ्वी हमें श्रेष्ठ भोजन व ऐश्वर्य दे।

भूमि सूक्त "वसुधैव कुटुम्बकम्" का उद्घोष है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" से आशय है वसुधा अर्थात् पृथ्वी ही परिवार है। जिस प्रकार परिवार में सभी लोग एक साथ रहते है उसी प्रकार पृथ्वी ही समस्त जड एवं चेतन की जननी है अतः मनुष्यों को जड एवं चेतन के साथ सामन्जस्यपूर्वक रहना चाहिए। परिवार की पहली पूर्वमान्यता है – द्वेष का अभाव। परिवार जन परस्पस्पर द्वेष ना करें। भूमि सूक्त द्वेष को दूर करने का सन्देश देता है। भूमि से पार्थना की गई है कि मानवों में परस्पर तथा मानवों का देवताओं से, पशु पक्षियों से, वनस्पतियों से द्वेष दूर हो।प्रकृति के 5 महाभूतों में पृथ्वी सर्वाधिक स्थूल है। सूक्ष्मतम आकाश का गुण शब्द है। वायु का गुण स्पर्श है। अग्नि का गुण तेज है। जल का गुण रस है। पृथ्वी का गुण गंध है। पृथ्वी सगंधा है। पृथ्वी से उत्पन्न सभी जड एवं चेतन में गंध विद्यमान है, इसलिए हमें परस्पर द्वेष नहीं करना चाहिए –

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ (भूमि सूक्त 12.1.23)

(अर्थात् हे भूमि आपके भीतर गंध भरी हुई है। यह औषधियों वनस्पतियों में प्रकट होती हैं। इस गंध को अप्सराएं व गंधर्व धारण करते हैं। देव भी गंध प्रिय हैं। हे भूमि! आप हमें उसी गंध से आपूरित करें। हम किसी से द्वैष न करें। हम सब प्रेमभाव से रहें।")

पृथ्वी की गंध सभी जीवों में है। जो गंध पुरूषों-स्त्रियों, चारों पैरों वाले प्राणियों में है, वही गंध हमको भी आपूरित करे। हमसे कोई द्वेष न करे -

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु।
कन्या यां वर्चो यद्भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥2.25॥

अर्थात् (यः) जो (ते) तेरा (गन्धः) गन्ध [अंश] (पुरुषेषु) अग्रगामी (पुंसु) रक्षक मनुष्यों में और (स्त्रीषु) स्त्रियों में (भगः) सेवनीय ऐश्वर्य और (रुचिः) कान्ति है। (यः) जो [गन्ध] (वीरेषु) वेगवान्

(अश्वेषु) घोड़ों में (उत) और (यः) जो (मृगेषु) हरिणों में और (हस्तिषु) हाथियों में है और (यत्) जो (वर्चः) तेज (कन्यायाम्) चमकती हुई कन्या [कन्या आदि राशि ज्योतिश्चक्र] में है, (भूमे) हे भूमि! (तेन) उस [तेज] के साथ (अस्मान् अपि) हमें भी (सं सृज) मिला, (कश्चन) कोई भी [प्राणी] (मा) मुझ से (मा द्विक्षत) वैर न करे।

2.7 पृथ्वी की राष्ट्रीय अवधारणा

राष्ट्र की माँ के अवधारणा -

भारत देश में राष्ट्र को भारत माता कहा जाता है इसका आधार भूमि सूक्त ही है। भूमि सूक्त में मातृभूमि के प्रति प्रेम या राष्ट्र भक्ति का सन्देश दिया गया है। पृथ्वी को माता कहा गया है। माता गर्भ में रखती है। बाद में पोषण देती है। तरुण होने पर शुभाशीष देती है। पृथ्वी भी ऐसी ही है। हम सब इसी में उगते हैं। सभी सांसारिक व आध्यात्मिक कार्यों का स्थल यह पृथ्वी ही है। मोक्ष या मुक्ति के प्रयत्नों का आधार भी यही पृथ्वी है। मोद प्रमोद और आनन्द का क्षेत्र भी पृथ्वी है। हम सबकी काया पृथ्वी से बनती है इसलिए देश के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी मातृभूमि से प्रेम करे। भूमि सूक्त भारतीय राष्ट्रवाद का आधार है। इस सूक्त में पृथ्वी की राष्ट्रीय अवधारणा विकसित हुई है। इस सूक्त में मनुष्य एवं पृथ्वी के मध्य माँ एवं पुत्र के सम्बन्ध दर्शाये है –

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। (भूमि सूक्त 12.1.12)
(यह भूमि मेरी माँ है और मैं इसका पुत्र हुँ।)
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥**(भूमि सूक्त 12.1.12)**

मातृभूमि के विषय में उत्तम भाषण –

प्रत्येक देश के मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि सब स्थानों, सब अवस्थाओं और राजसभा, न्यायसभा, धर्मसभा आदि में अपने मातृभूमि के गुणों की महिमा जाने और उसका बखान करें। ऋषि ने सूक्त में कहा है कि अपनी मातृभूमि अपने देश के लिए सदैव अच्छी बातें ही बोलनी चाहिए। अपने देश के लिए अथवा अपनी मातृभूमि के लिए कभी कटु वचन अथवा अपशब्द नहीं होनी चाहिए। ऋषि ने सूक्त में प्रार्थना की है जो ग्राम, अरण्य, सभा, संग्राम (नगर) एवं समिति है, उनमें हम तुम्हारे विषय में अच्छा ही बोलें –

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ (भूमि सूक्त 12.1.56)

अर्थात् (ये ग्रामाः) जो गाँव, (यत् अरण्यम्) जो वन, (याः सभाः) जो सभाएँ (भूम्याम् अधि) भूमि पर हैं। (ये संग्रामाः) जो संग्राम और (समितयः) समितिएँ [सम्मेलन] हैं, (तेषु) उन सब में (ते) तेरा (चारु) सुन्दर यश (वदेम) हम कहें ॥

2.8 पृथ्वी की पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय अवधारणा

आज सम्पूर्ण विश्व पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय समस्याओं से ग्रसित है इसका एक कारण प्राकृतिक संसाधनों के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण है। मानव तथा प्रकृति के मध्य सुमधुर सम्बन्ध ही पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय समस्याओं से मुक्ति दिला सकते है। भूमि सूक्त में प्रकृति के

प्रतीक के रूप भूमि को माता व स्वयं को पुत्र कहा गया है। इस सूक्त में में पिता पर्जन्य है। पर्जन्य आकाश में व्याप्त जलवायु चक्र हैं। आधुनिक विज्ञान की भाषा में ईकोलोजिकल साईकिल कहते है। पर्जन्य से वर्षा होती है। वर्षा के सेचन से माता पृथ्वी आनंदित होती है। अन्न, जल, फल आदि पर्जन्य व पृथ्वी के समागम का ही प्रसाद है। जिस प्रकार मनुष्य अपनी माँ को कष्ट नहीं देता वरन् त्याग एवं सेवा का भाव रखता है उसी प्रकार इस सूक्त में प्रार्थना की गई है कि आप दुखी न हों। हम औषधि, बीज बोने या निकालने के लिए आपको खोदें तो आपका परिवार, घासफूस, वनस्पति फिर से तीव्र गति से उगे-बढ़े। आपके मर्म को चोट न पहुंचे। जब इस प्रकार का भाव होता है तो मानव प्राकृतिक संसाधनों का शोषक नहीं पोषक होता है। वह प्राकृतिक संसाधनों से जितना लेता है उतना लौटाता भी है। इस प्रकार भूमि सूक्त में वैदिक ऋषियों की पृथ्वी की पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय अवधारणा को प्रदर्शित किया गया है -

यत्ते॑ भूमे वि॒खना॑मि क्षि॒प्रं तदपि॑ रोहतु।
मा ते॒ मर्म॑ विमृग्वरि॒ मा ते॒ हृद॑यमर्पिपम् ॥ भूमि सूक्त 12.1.35॥

पदार्थान्वयभाषाः -(भूमे) हे भूमि! (यत्) जो कुछ (ते) तेरा (विखनामि) मैं खोद डालूँ, (तत्) वह (क्षिप्रम् अपि) शीघ्र ही (रोहतु) उगे। (विमृग्वरि) हे खोजने योग्य! (मा) न तो (ते) तेरे (मर्म) मर्म स्थल को और (मा) न (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय को (अर्पिपम्) मैं हानि करूँ ॥35॥

2.8.1 संवत्सरचक्र का पृथिवी से सम्बन्ध

पर्यावरण का संवत्सरचक्र से सम्बन्ध है। संवत्सरचक्र का आधार पृथिवी है। भूमि सूक्त के 36 वें मन्त्र में छः ऋतुओं , दो अयनों – उत्तरायण एवं दक्षिणायन और अहोरात्र का उल्लेख कर संवत्सरचक्र की परिपूर्ण कल्पना की गई है तथा पार्थना की गई है कि ये षड् ऋतुएं, दोनों अयन तथा दिन और रात हमारे लिए सुखकारी हों। इस मन्त्र में यह निर्देश है कि पृथ्वी तथा सूर्य मध्य के सम्बन्धों का छः ऋतुओं तथा उत्तरायण एवं दक्षिणायन दिन और रात बनते है इसलिए इन सब के अनुकूल हेतु इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है –

ग्रीष्मस्ते॑ भूमे व॒र्षाणि॑ श॒रद्धे॑म॒न्तः शिशि॑रो व॒सन्तः।
ऋ॒तव॑स्ते॒ विहि॑ता हाय॒नीर॑होरा॒त्रे पृ॑थिवि नो दुहाताम् ॥12.1.36

अर्थात् (भूमे) हे भूमि! (ते) तेरे (ग्रीष्मः) गर्मा की ऋतु [ज्येष्ठ-आषाढ़], (वर्षाणि) वर्षा ऋतु [श्रावण-भाद्र], (शरत्) शरद् ऋतु [आश्विन-कार्तिक], (हेमन्तः) शीतकाल [अग्रहायण-पौष], (शिशिरः) उतरता हुआ शीतकाल [माघ-फाल्गुन] और (वसन्तः) वसन्त काल [चैत्र-वैशाख] (ऋतवः) ऋतु हैं, [उनको] (पृथिवि) हे पृथिवी! (विहिताः) स्थापित (हायनीः) वर्षों, तक (ते) तेरे (अहोरात्रे) दिन-राति [दोनों] (नः) हमारा (दुहाताम्) कल्याण करें ॥

2.8.2 यज्ञ संस्था एवं वेदों को धारण करने वाली पृथ्वी

यज्ञ एवं वेद पर्यावरण के रक्षक हैं और इन दोनों का संचालन पृथ्वी पर होता है। आज वैज्ञानिक पारिस्थितिकीय समस्याओं का समाधान वेदों एवं यज्ञों में खोज रहे हैं। भूमि सूक्त के 38 एवं 39 वें मन्त्र में यज्ञ संस्था एवं वेदों से पृथिवी के सम्बन्धों को प्रदर्शित किया गया है। यज्ञ यागादि क्रियाएं पृथिवी पर ही सम्पादित होती है। ऋत्विज ऋक् यजुष् सामादि वेदों से परमात्मा का चिन्तन करते है वह पृथिवी हमारा कल्याण करें -

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥ भूमिसूक्त 12.1.38॥

अर्थात् (यस्याम्) जिस भूमि पर (सदोहविर्धाने) सभा और अन्नस्थान हैं, (यस्याम्) जिस भूमि पर (यूपः) यज्ञस्तम्भ (निमीयते) गाड़ा जाता है। (यस्याम्) जिस भूमि पर (ब्रह्माणः) ब्रह्मा वेदवेत्ता लोग (ऋग्भिः) ऋग्वेद की ऋचाओं से और (यजुर्वेदः) यजुर्वेदी (परमात्मा देव की पूजा जाननेवाले लोग) (साम्ना) सामवेद की ऋचाओं से [परमात्मा को] (अर्चन्ति) पूजते हैं। (यस्याम्) जिस पर (ऋत्विजः) सब ऋतुओं में यज्ञ करनेवाले योगी जन (इन्द्राय) इन्द्र के लिये (सोमम्) सोम पान करने को (युञ्जन्ते) प्रदान करते हैं।

2.9 पृथिवी की न्यायिक अवधारणा

भूमि सूक्त में पृथ्वी समान अधिकार प्रदान करने वाली बताया है। पृथ्वी माँ है और माँ कभी किसी के साथ भेदभाव नहीं करती है। इस सूक्त में न केवल मनुष्यों की वरन् पशु पक्षियों एवं वनस्पतियों के भी समान अधिकार की बात कही है क्यों कि ये भी मानवों के साथ साथ पृथिवी पर समान रूप से निवास करते है। ऋषि पार्थना करते हैं कि जो मनुष्य पृथिवी पर ऊँचे-नीचे, भले-बुरे मार्गो का विचार करके सुमार्ग पर चलते हैं, वे कुमार्गियों से बचकर सदा सुखी रहते हैं

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥1.47॥

पदार्थान्वयभाषाः -(ये) जो (ते) तेरे (बहवः) बहुत से (पन्थानः) मार्ग (जनायनाः) मनुष्यों के चलने योग्य हैं, [और जो] (रथस्य) रथ के (च) और (अनसः) छकड़े [वा अन्न] के (यातवे) चलने के लिये (वर्त्म) मार्ग है। (यैः) जिनसे (उभये) दोनों (भद्रपापाः) भले और बुरे [प्राणी] (संचरन्ति) चले चलते हैं, (तम्) उस (अनमित्रम्) शत्रुरहित और (अतस्करम्) तस्करशून्य (पन्थानम्) मार्ग को (जयेम) हम जीतें, (यत्) जो कुछ (शिवम्) मङ्गल है, (तेन) उससे (नः) हमें (मृड) सुखी कर ॥47॥

जिस पर पृथिवी पर दो पाँववाले पक्षी अर्थात् हंस, बड़े उड़नेवाले गरुड़ आदिशक्तिवाले गिद्ध चील आदि वयांसि पक्षीगण उड़ते रहते हैं उन सभी को भूमि माता समान अधिकार प्रदान करें -

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि। 12.1.51॥

2.10 सारांश

भूमि सूक्त वैदिक ऋषियों के पृथ्वी के सम्बन्ध में व्यापक विचार को प्रस्तुत करता है। भूमि सूक्त के अनुसार पृथ्वी दिव्य गुणों से विभुषित है जो अपने उपासक को भौतिक वस्तुएं प्रदान करती है तथा शत्रुरहित कर उसकी रक्षा करती है। भूमि सूक्त के अनुसार पृथ्वी केवल धन सम्पत्ति सुर्वणादि ही प्रदात्री नहीं है वरन् खाद्य प्रदार्थों को प्रदान करने वाली भी है। भूमि सूक्त के अनुसार पृथ्वी की सत्ता अनादि काल से है। देवताओं ने पृथ्वी का निर्माण किया है। भूमि सूक्त "वसुधैव कुटुम्बकम्" का उद्घोष है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" से आशय है वसुधा अर्थात् पृथ्वी ही

परिवार है। जिस प्रकार परिवार में सभी लोग एक साथ रहते है उसी प्रकार पृथ्वी ही समस्त जड एवं चेतन की जननी है अतः मनुष्यों को जड एवं चेतन के साथ सामन्जस्यपूर्वक रहना चाहिए। भारत देश में राष्ट्र को भारत माता कहा जाता है इसका आधार भूमि सूक्त ही है। भूमि सूक्त में मातृभूमि के प्रति प्रेम या राष्ट्र भक्ति का सन्देश दिया गया है। मानव तथा प्रकृति के मध्य सुमधुर सम्बन्ध ही पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय समस्याओं से मुक्ति दिला सकते है। भूमि सूक्त में प्रकृति के प्रतीक के रूप भूमि को माता व स्वयं को पुत्र कहा गया है। सूक्त में न केवल मनुष्यों की वरन् पशु पक्षियों एवं वनस्पतियों के भी समान अधिकार की बात कही है क्यों कि ये भी मानवों के साथ साथ पृथिवी पर समान रूप से निवास करते है। इस प्रकार भूमि सूक्त पृथ्वी की सम्पूर्ण एवं विशद वैदिक अवधारणा का सूचक जिसमें पृथ्वी की दैवीय, भौतिक, पारिस्थितिकीय, राष्ट्रीय एवं न्यायिक अवधारणा प्रकट हुई है।

2.11 शब्दावली

1. **पारिस्थिकी -** पारिस्थितिकी (अंग्रेज़ी:इकोलॉजी) जीवविज्ञान व भूगोल की एक शाखा है जिसमें जीव समुदायों का उसके वातावरण के साथ पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करतें हैं।

2. **पृथिवी** -पृथिवी , स्त्री, (प्रथते विस्तारं यातीति। प्रथ + "प्रथेः षिवन् संप्रसारणञ्च।" उणा0 1। 150। इति षिवन् सम्प्रसारणञ्च। ङीष्।) जो विस्तार को प्राप्त होती है उसे पृथ्वी कहते है। मधु एवं कैटभ ने इसका मेदन किया इसलिए इसे मेदिनी तथा चराचर जगत् को धारण करने वाली होने से धरा कहते है।

3. **भूमिः -** भूमिः , स्त्री, (भवन्ति भूतान्यस्यामिति। भू + "भुवः कित्।" उणा0 4। 45। इति मिः। स च कित्।) इसी में समस्त भूत (पदार्थ) उत्पन्न होते है अतः इसे भूमि भी कहते है।

4. **वसुधैव कुटुम्बकम् -** वसुधैव कुटुम्बकम् सनातन धर्म का मूल संस्कार तथा विचारधारा है। इसका अर्थ है- धरती ही परिवार है (वसुधा एव कुटुम्बकम्)।

5. **वेद** - वेद शब्द ज्ञानार्थक 'विद्' धातु (विद ज्ञाने) से 'घञ् (अ) प्रत्यय करने पर बनता है, इसका अर्थ है ज्ञान। अतः 'वेद' शब्द का अर्थ होता है ज्ञान की राशि या ज्ञान का संग्रह ग्रन्थ।

6. **अथर्व** - अथर्व शब्द का निर्वचन निरुक्त [निरुक्त — 11.2.17] तथा गोपथ ब्राह्मांण में किया गया है कि ''थर्व धातु, जिसका अर्थ कौटिल्य अथवा हिंसा है, में नञ् समास करके 'अथर्व' शब्द की सिद्धि हुई है।'' इस प्रकार अथर्व का अर्थ है— ''जिसमें तनिक भी हिंसा न हो।''

7. **देवता**- स्त्री, (देव एव। स्वार्थे तल्।) देवं द्युतिं क्रीडां वा तनोति या। अर्थात् जो कान्ति अथवा क्रीडा का विस्तार करते हैं उनको देवता कहते हैं। यास्क के अनुसार दानात् वा दीपनात् वा द्योतनात् वा अर्थात् जो दान देकर प्रतिदान की कामना नहीं करे अथवा जो चमकता हो अथवा कांतिमान् हो उसे 'देवता' कहते हैं।

8. **अग्निम्**- अग्र + नी = अग्निः। यास्क के अनुसार अग्नि अग्रणीर्भवति, अग्रं यज्ञेषु

प्रणीयते, अङ्गं नयति सन्नममान: जो यज्ञ में सर्वप्रथम उत्पन्न होता है- अथवा जो यज्ञ में आगे ले जाया जाता है वह अग्नि है।

9. **इन्द्रम्** - इरा +दृ = इन्द्रः। इरां दारयतीति इन्द्रः। इरां धारयतीति इन्द्रः। अर्थात् जो अन्न को विदीर्ण करता है अथवा अन्न को धारण करता है। वही इरा +दृ है- यास्क।

10. **समुद्रः**-समभिद्रवन्ति अस्मिन्नापः। सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि। समुन्नतीति वा-यास्क अर्थात् जिसमें सभी जल संचरण करते हैं अथवा जिसमें सभी जलचर प्राणी प्रसन्न रहते हैं उसे 'समुद्र' कहते हैं।

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- चौबे, व्रजबिहारी, अथर्ववेदियं भूमिसूक्तम् (संस्कृत एवम् हिन्दी अनुवाद), कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन,होशियारपुर,2010
- शर्मा, उमाशंकर, अथर्ववेदियं भूमिसूक्तम्, चौखम्भा क्लासिका, वाराणसी, 2022
- कोठारी, गुलाब, पृथ्वी सूक्त, पं0 मधुसूदन ओझा वैदिक अध्ययन एवं शोधपीठ संस्थान, जयपुर, 2017
- ए. हनुमय्या, भू सूक्त, श्री अरविन्द कपाली शास्त्री इंस्टिट्यूट ऑफ़ वेदिक कल्चर, बैगंलौर,2005

2.13 बोध प्रश्न

1. भूमि सूक्त का सामान्य परिचय दिजिए?
2. "भूमि सूक्त भारतीय राष्ट्रवाद का आधार है" इस पंक्ति की समीक्षा किजिए?
3. पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु पृथ्वी सूक्त की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए?
4. पृथ्वी की आधिभौतिक अवधारणा का विवेचन किजिए?

इकाई 3 राष्ट्राभिवर्धन, सामनस्य, कृमिनाशनम् सूक्तों का प्रतिपाद्य

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 राष्ट्राभिवर्धन सूक्त : सामान्य परिचय एवं मूल पाठ
3.3 अभिवर्तमणि विचार
3.4 वैदिक राष्ट्र की संकल्पना
3.5 आदर्श राजा के गुण
3.6 सामनस्य सूक्त : सामान्य परिचय एवं मूल पाठ
3.7 आदर्श समाज की संकल्पना
3.8 आदर्श परिवार की संकल्पना
3.9 सामाजिक एकता का सन्देश
3.10 कृमिनाशनम् सूक्त : सामान्य परिचय एवं मूल पाठ
3.11 सूर्य किरण में कृमि नाश की क्षमता
3.12 रोगकृमियों के प्रकार
3.13 मन्त्रविद्या द्वारा कृमि नाश
3.14 रोगकृमियों के विषस्थान
3.15 उपसंहार
3.16 शब्दावली
3.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.18 बोध प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

1. अथर्ववेद में प्रोक्त आदर्श राष्ट्र, समाज एवं परिवार के निर्माण में आवश्यक कार्यों का तथा कीटाणुओं के प्रकार एवं नष्ट करने के साधनों की समीक्षा कर पायेगें।
2. राष्ट्राभिवर्धन सूक्त के आधार पर वेदों में विकसित राष्ट्र के सिद्धान्त एवं आदर्श राजा के गुणों का ज्ञान प्राप्त कर पायेगें।
3. सामनस्य सूक्त के अध्ययन से वेदों में प्रदत्त आदर्श समाज की अवधारणा एवं सामाजिक एकता हेतु आवश्यक तत्त्वों का अवबोध करेंगें।

4. कृमिनाशनम् सूक्त के पठन के उपरान्त रोगकृमियों के प्रकार, उनके विषस्थान एवं कृमियों के नाश विविध विधि यथा सूर्यकिरण मन्त्रविद्या आदि का परिज्ञान करने में समर्थ हो जाएंगें।

3.1 प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन परम्परा में ऋग्वेद यजुर्वेद एवं साम के साथ अथर्ववेद का भी अत्यन्त महत्त्व है। अथर्ववेद में अथर्ववेद में कुल 20 काण्ड 730 सूक्त तथा 5987 मन्त्र हैं। अथर्ववेद के कई नाम हैं-

1- गोपथ ब्राह्मण में इसे 'अथर्वांगिरस' वेद कहा गया है.

2- ब्रह्म विषय होने के कारण इसे 'ब्रह्मवेद' भी कहा गया है.

3- आयुर्वेद, चिकित्सा, औषधियों आदि के वर्णन होने के कारण 'भैषज्य वेद' भी कहा जाता है .

4- 'पृथ्वीसूक्त' इस वेद का अति महत्त्वपूर्ण सूक्त है. इस कारण इसे 'महीवेद' भी कहते हैं.

भूगोल, खगोल, वनस्पति विद्या, असंख्य जड़ी-बूटियाँ, आयुर्वेद, गम्भीर से गम्भीर रोगों का निदान और उनकी चिकित्सा, अर्थशास्त्र के मौलिक सिद्धान्त, राजनीति के गुह्य तत्त्व, राष्ट्रभूमि तथा राष्ट्रभाषा की महिमा, शल्यचिकित्सा, कृमियों से उत्पन्न होने वाले रोगों का विवेचन, मृत्यु को दूर करने के उपाय, मोक्ष, प्रजनन-विज्ञान अदि सैकड़ों लोकोपकारक विषयों का निरूपण अथर्ववेद में है. आयुर्वेद की दृष्टि से अथर्ववेद का महत्त्व अत्यन्त सराहनीय है. अथर्ववेद में शान्ति-पुष्टि तथा अभिचारिक दोनों तरह के अनुष्ठन वर्णित हैं। वस्तुतः अथर्ववेद गुणों का महासागर है।

प्रस्तुत इकाई में हम अथर्ववेद के तीन जनकल्याणकारी सूक्तों का अध्यन करने जा रहें हैं – राष्ट्राभिवर्धन सूक्त, सामनस्य सूक्त, कृमिनाशनम् सूक्त। राष्ट्राभिवर्धन सूक्त अथर्ववेद के प्रथम काण्ड का उनतीसवाँ सूक्त है। सूक्त में आदर्श राष्ट्र एवं समाज के निर्माण का आह्वान किया गया है। साथ ही सूक्त में राष्ट्र की अभिवृद्धि के लिए एवं शत्रु को पराजित करने हेतु कामना की गई। सामनस्य सूक्त अथर्ववेद के तृतीय काण्ड का तीसवाँ सूक्त है। सामनस्य का अर्थ है - शुभ संकल्प से युक्त मन वाला होना। सूक्त में व्यक्ति के परीवार एवं समाज के प्रति कर्त्तव्यों एवं समाज में एकता का सन्देश दिया गया है। कृमिनाशनम् सूक्त अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के बत्तीसवाँ सूक्त है। इस सूक्त में यह भी बताया गया कि सूर्य की किरणें कृमियों का नाश करने की क्षमता है। कृमिनाशनम् सूक्त के मुख्य प्रतिपाद्यों में रोगकृमियों के प्रकार, मन्त्रविद्या द्वारा कृमि नाश एवं रोग के कृमियों में विषस्थानों की चर्चा है।

आइये इन सूक्तों का अध्ययन करते हैं।

3.2 राष्ट्राभिवर्धन सूक्त : सामान्य परिचय एवं मूल पाठ –

राष्ट्राभिवर्धन सूक्त अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के उनतीसवाँ सूक्त है। सूक्त में राष्ट्र की अभिवृद्धि के लिए एवं शत्रु को पराजित करने हेतु कामना की गई। इस सूक्त का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

सूक्त : अथर्ववेद 1.29

देवता : अभिवर्तमणि/ ब्रह्मणस्पति

छन्द : अनुष्टुप्

ऋषि : वशिष्ठ

कुल मन्त्र : 06

सूक्त का मूल पाठ -

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥1॥
अभिवृत्य सपत्नान् अभि या नो अरातयः।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥2॥
अभि त्वा देवः सविताभि षोमो अवीवृधत्।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥3॥
अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥4॥
उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः।
यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥5॥
सपत्नक्षयणो वृषाभिरष्ट्रो विषासहिः।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥6॥

3.3 अभिवर्तमणि विचार

एक विशिष्ट प्रकार की मणि की इस सूक्त में चर्चा हुई है जिसका नाम अभिवर्तमणि है। जिस प्रकार राजा के चिन्ह राजदण्ड, छत्र, चामरादि होते है उसी प्रकार का ' अभिवर्तमणि ' भी एक राजचिन्ह है। इसके धारण करने के समय यह सूक्त बोला जाता है। अभिवर्तमणि का अर्थ है – अभितो वर्तते चक्रम् अनेनेति (सायणभाष्य)। चारों तरफ (अप्रतिहत गति से) घूमने वाली मणि। देवों का राजा इन्द्र है, उनका पुरोहित बृहस्पति इन्द्र के के शरीर पर यह मणि बाँधता है।

यह मणि राष्ट्र की अभिवृद्धि अथवा कल्याण के लिए बाँधी जाती है। इसी क्रम सूक्त में यह सन्देश दिया गया है कि प्रत्येक राष्ट्र के लोगों को राष्ट्र के कल्याण की कामना करनी चाहिए। इस सूक्त का प्रथम मन्त्र इस प्रकार है -

अभीवर्तेन मणिना,
येनेन्द्रो अभिवावृधे।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते,
अभि राष्ट्राय वर्धय।।[1]

(चारों तरफ (अप्रतिहत गति से) घूमने वाली मणि से जिससे इन्द्र बड़ा हुआ, हे ब्रह्मणस्पति, उस (मणि) से हम लोगों को राष्ट्र (की समृद्धि) के लिए बढ़ाओ)

[1]अथर्ववेद1.29.1

3.4 वैदिक राष्ट्र की संकल्पना

वेदों में राष्ट्र शब्द का क्या अर्थ है इस तथ्य का ज्ञान भी हमें इस सूक्त के अध्ययन से प्राप्त होता है। राष्ट्र शब्द केवल देश अथवा केवल जनता के समूह का वाचक वेद में नहीं है। केवल भूमि के एक विभाग पर रहने वाले मनुष्य समाज का बोध राष्ट्र शब्द से वेद में नहीं होता है। इस प्रकार के राष्ट्र भूमि पर बहुत होते होंगे परन्तु वेद जिसे राष्ट्र कहता है वैसे राष्ट्र कितने होंगे इसका विचार हमें अवश्य करना चाहिए। वेद में राष्ट्र शब्द राजते तत् राष्ट्रं अर्थात् जो चमकता है वह राष्ट्र अर्थ का बोधक है अर्थात् जो मनुष्यों का समुदाय भूमण्डल पर अपने परिश्रम से चमकता है तथा अन्य लोगों की आँख को अपनी ओर खींच सकता है वही वेद की दृष्टि से राष्ट्र कहलाता है। ऐसा राष्ट्र छोटा हो या बड़ा वह राष्ट्र कहा जाएगा। परन्तु जो राष्ट्र विस्तार की दृष्टि से विशाल हो और यश/कीर्ति की दृष्टि से जिसमें चमक ना हो वह राष्ट्र नहीं हो सकता। वैदिक धर्मियों अपने परिश्रम से अपनी राष्ट्र में इस प्रकार का तेज उत्पन्न करना चाहिए की जिससे राष्ट्र की उन्नति हो।

दूसरा कोई भी राष्ट्र तभी राष्ट्र कहलाता है जब उसमें संगठन हो। राष्ट्र सभी को साथ में लेकर चलने वाली भावना तथा एकता से बनता है। **अस्मान् राष्ट्राय अभि वर्धय**।[2]

अर्थात् हमें राष्ट्र के लिए बढ़ाओ अर्थात् हमारी उन्नति इसलिए करो की हम राष्ट्र हित साधन करने के योग्य बने। हमारा शरीर सुदृढ हो हमारी आयु दीर्घ हो , हमारे इन्द्रिय अधिक कार्यक्षम बने, हमारा मन मनन शक्ति से युक्त हो, हमारी बुद्धि ज्ञान से परिपूर्ण हो इसमें आत्मिक बल बढे तथा हमारी बौद्धिक सामाजिक एवं अन्य शक्तियां बढे और यह शक्तियां इसलिए बढे कि हमारा राष्ट्र उन्नति शील बने इन शक्तियों का विकास इसलिए नहीं हो कि केवल एक व्यक्ति का विकास हो या केवल एक व्यक्ति का उन पर अधिकार हो जाए। वरन् यह शक्तियां इसलिए बढें ताहि राष्ट्र की प्रगति अथवा उन्नति हो सके। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र का अस्मान् शब्द बड़ा महत्त्व रखता है। इसका अर्थ होता है कि हम सबको मिलकर राष्ट्र हित के लिए प्रयास करना चाहिए। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि किसी एक ही उन्नति या किसी एक ही शक्ति का विकास यहाँ अपेक्षित नहीं है परन्तु सभी प्रजाजनों की शक्ति का विकास यहाँ अपेक्षित है।

इस सूक्त में देश एवं निवासी के मध्य अटूट सम्बन्धों पर बल दिया गया है। प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह यह भावना करे कि जो भी मैं करता हूँ वह राष्ट्र के लिए समर्पित हो -

राष्ट्राय मह्यं बध्यतां
सपन्नेभ्यः पराभुवे।।[3]

मुझे राष्ट्र के लिए बांध दो ताकि में राष्ट्र के शत्रुओं का नाश कर सकूँ मेरा बन्धन राष्ट्र के साथ सदैव रहे। मेरे राष्ट्र के साथ ऐसा सम्बन्ध जुड़े कि वह कभी नहीं टूटे।

इस सूक्त में यह सन्देश दिया गया है कि हर एक मनुष्य अभिराष्ट्र बने। राष्ट्रहित करने का विचार सदैव अपने सम्मुख रहे। मनुष्य कहीं भी जाए अथवा कुछ भी करें उसके विचार उसके राष्ट्रीय विचार सदैव समक्ष रहना चाहिए। इस सूक्त के 6 वें मन्त्र में आए अभिराष्ट्र का अर्थ है - अपने चारों ओर राष्ट्र है ऐसा मानने वाला -

---

[2] अथर्ववेद1.29.1

[3] अथर्ववेद1.29.4

अभिराष्ट्रो विषासहिः।[4]

3.5 आदर्श राजा के गुण

इस सूक्त में आदर्श राजा के गुणों की भी चर्चा की गई है। राजा अपनी भोग के लिए नहीं अपितु राष्ट्रहित करने के लिए राज गद्दी पर बैठता है। ऐसे आदर्श राजा के लक्षण एवं गुणों का विश्लेषण भी इस सूक्त किया गया है -

1. **राष्ट्राय मह्यं बध्यतांसपन्नेभ्यः पराभुवे।।**[5] -राष्ट्र की उन्नति और शत्रुओं का पराभव करने के लिए राज चिह्न मेरे मेरे शरीर पर बांधा जाए। मणि आदि रत्न तथा अन्य जो राजचिह्न राजा धारण करता है वह अपनी शोभा को बढ़ाने के लिए नहीं अपितु दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए धारण करता है -राष्ट्र की उन्नति के लिए दूसरा जनता के शत्रुओं का नाश करने के लिए |

2. **अभिराष्ट्रः**[6]**-** जिसके चारों ओर राष्ट्र का ही विचार हो वही आदर्श राजा होता है। राजा अपने राष्ट्र में रहे या ना रहे अथवा राष्ट्र के बाहर हो। उसका मन में हमेशा राष्ट्र के हित का ही विचार होना चाहिए।

3. **शत्रुहः**[7] - शत्रु का नाश करने वाला। अपने शत्रुओं को पराजित करके ही राजा राष्ट्र का कल्याण कर सकता है।

4. **असपत्नः**[8] **-** जिस राजा का राष्ट्र के अंदर कोई प्रति पक्षी या विरोधी ना हो वही राजा आदर्श राजा होता है।

5. **सपत्नहा-**[9]प्रति पक्षी का नाश करने वाला अर्थात् प्रति पक्षी का पराभव करने वाला राजा आदर्श राजा होता है। इसी से राष्ट्र में शान्ति एवं विकास सम्भव हो पाता है।

6. **वृषा**[10] **-** बलवान सब प्रकार की बलों ं संयुक्त राजा होना चाहिए अन्यथा वह पराभव को प्राप्त हो जाता है।

7. **विषानहि**[11] **-** शत्रु के हमले होने पर उनको सहन करके अपने स्थान से पीछे हटने वाला

8. **वीराणां जनस्य च विराजानि**[12] **-**राष्ट्र के शूरवीर तथा राष्ट्र की सम्पूर्ण जनता इन सब को संतुष्ट करने वाला कथा प्रजा का भला सोचने वाला प्रजा का पालन करने वाला

9. प्रतिपक्षियों को दबाना, शत्रुओं का नाश करना, सेना के साथ चढ़ाई करना एवं जो दुर्व्यवहार करता है उनको दण्डित करना यही आदर्श राजा का कर्तव्य है। इस सूक्त के मन्त्र सं0 02 में राष्ट्र रक्षा के लिए शत्रु का पराजित करने हेतु कहा गया है। -

---

[4] अथर्ववेद1.29.6
[5] अथर्ववेद1.29.4
[6] अथर्ववेद1.29.6
[7] अथर्ववेद1.29.5
[8] अथर्ववेद1.29.5
[9] अथर्ववेद1.29.6
[10] अथर्ववेद1.29.6
[11] अथर्ववेद1.29.6
[12] अथर्ववेद1.29.6

**अभिवृत्यं सपत्ना
नभि या नो अरातयः।
अभि पृतुन्यतन्त तिष्ठा
भि यो नो दुरस्यति।।** [13]

(विपक्षियों को चारों तरफ से घेर कर, जो हमको नहीं देने वाले हैं (उनको भी घेर कर) (तथा जो हमसे) युद्ध की इच्छा करने वाले हैं (उनको भी घेर कर) पराजित करो, जो हमसे दुर्व्यवहार करता है (उसको भी पराजित करो))

3.6 सामनस्य सूक्त : सामान्य परिचय एवं मूल पाठ -

सामनस्य सूक्त अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के तीसवाँ सूक्त है। सामनस्य का अर्थ है - शुभ संकल्प से युक्त मन वाला होना। सूक्त में व्यक्ति के परीवार एवं समाज के प्रति कर्त्तव्यों एवं समाज में एकता का सन्देश दिया गया है।इस सूक्त का मुख्य प्रतिपाद्य है मानव समाज एक आदर्श समाज कैसे बन सकता है? इस सूक्त में आदर्श परिवार की संकल्पना की गई है। किसी भी परिवार में सुख एवं समृद्धि तभी आ सकती है जब सभी परिवार के सभी व्यक्ति एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्य एवं प्रेम का व्यवहार करते हैं। सभी वर्गों के लोगों के लिए समान खानपान एवं समान उपासना पद्धति का उपदेश भी इस सूक्त में दिया गया है। इस सूक्त में मानव समाज में भेदभाव समाप्त होकर एकता का भाव की प्रार्थना की गई है।

इस सूक्त का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

सूक्त : अथर्ववेद 3.30

देवता : चन्द्रमा / सांमनस्यम्

छन्द : अनुष्टुप्, 5 विराड् जगती, 6 प्रस्तारपङ्क्तिः, 7 त्रिष्टुप्

ऋषि : अथर्वा

कुल मन्त्र : 07

मूल पाठ -

**सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥1॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।**

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥2॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।

**सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥3॥
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥4॥
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥5॥**

[13] अथर्ववेद1.29.2

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥6॥
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥7॥

3.7 आदर्श समाज की संकल्पना

मानव समाज एक आदर्श समाज कैसे बन सकता है? इस सूक्त में इस सन्देश को प्रदान किया गया है। यदि सामाजिक एकता ना हो , तो मनुष्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में आदर्श समाज की संकल्पना प्रस्तुत की गई है -

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥[14]

(हे मनुष्यों। हम आपके लिए हृदय को प्रेम पूर्ण बनाने वाले तथा सौमनस्य बढ़ाने वाले कर्म करते। आप लोग परस्पर द्वेष रहित होकर उसी प्रकार व्यवहार करें जिस प्रकार उत्पन्न हुई बछड़े से गाय स्नेह की करती है।

इस मन्त्र में आदर्श समाज के लिए आभ्यन्तर और बाह्य शुद्धि की अपेक्षा की गई है -

आभ्यन्तर शुद्धि - सबसे प्रथम व्यक्ति का आन्तरिक सुधार होना चाहिये। समस्त शुद्धता का प्रारम्भ मनुष्य के हृदय के सुधार होना चाहिये। हृदय सुधर जाने पर अन्य सब सुधार मनुष्य को लाभ पहुंचा सकते हैं, परन्तु हृदय मे दोष रहे तो बाह्य सुधार से कोई भी लाभ नहीं हो सकता इसलिये इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में सहृदय शब्द से हृदय के शुद्धि की अपेक्षा सबसे प्रथम कही है। सहृदय (स-हृदय) = हृदय के भावों समानता| अर्थात् दूसरे के दुःख से दुःखी और दूसरे के सुख से सुखी होना।

जिनके मनुष्यों के हृदय ऐसे होते है वे सामाजिक एकता बढ़ाने के कार्य करने के अधिकारी होते हैं। जो दूसरो को दुखीः देखकर दुःखी नहीं होता वह मानव समाज का किसी भी प्रकार का कल्याण नहीं कर सकता। हृदय का सुधार सबसे मुख्य है।

इसके बाद इसी मन्त्र में सामनस्य शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ है मन का शुभ संकल्पमय होना। मन के अधीन सम्पूर्ण इन्द्रियां होती है। इसलिये जैसे मन के विचार होते है वैसे ही इन्द्रियों की प्रवृत्ति होती है। इसलिये अन्य इन्द्रियों से उत्तम प्रशस्त कार्य होने के लिये मन के शुभ संकल्पमय होने को अत्यन्त आवश्यकता है। इसी से आदर्श समान बनता है।

बाह्य शुद्धि -इस सूक्त के प्रथम मन्त्र के द्वितीय पद में अविद्वेषम् शब्द से बाहर की शुद्धि की अपेक्षा की गई है।

अविद्वेषम् =द्वेष न करना। एक दूसरे के साथ परस्पर द्वेष न करना। यह शब्द बाहर के सुधार करने की सूचना देता है। मनुष्य का व्यवहार कैसा हो इस प्रकार इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मनुष्य का व्यवहार ऐसा हो कि जिससे कोई परस्पर द्वेष ना करें। यह मनुष्य के व्यवहार का आदर्श है।

[14] अथर्ववेद 3.30.1

समाज के लोगों का के आपस में व्यवहार कैसा होना चाहिए इसका उदाहरण ही इस प्रथम मन्त्र के उत्तरार्ध में दिया है। समाज के लोगों का के आपस में व्यवहार कैसा होना चाहिए जैसा गाय अपने नए जन्म लिए हुए बिछड़े के साथ प्रेम करती है। यह निर्वैरता का यह उदाहरण है। अहिंसा का व्यवहार ही समाज को उत्कृष्ट बनाता है। जिस प्रकार गौ माता का अपने नवजात बछड़े से व्यवहार करती है उसी समाज के लोग परस्पर स्नेह करें।

3.8 आदर्श परिवार की संकल्पना

किसी भी परिवार में सुख एवं समृद्धि तभी आ सकती है जब सभी परिवार के सभी व्यक्ति एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्य एवं प्रेम का व्यवहार करते है। इस सूक्त के दूसरे तथा तीसरे मन्त्र में आदर्श परिवार की संकल्पना को प्रस्तुत किया गया है -

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥[15]

(पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करें और माता के साथ उत्तम भावनाओं से व्यवहार करें। पत्नी पति के साथ मीठा और शांति से युक्त व्यवहार करें। भाई भाई से द्वेष ना करें और बहन बहन के साथ झगड़ा ना करें। सब मिलकर आपस में मधुर व्यवहार करते हुए अपने कल्याण के लिए एक हो जाएं। जिससे विरोध और द्वेष नहीं होता है ऐसा संज्ञान तुम्हारे घर लोगों के लिए मैं देता हूँ।)

यहाँ ऋषि आदर्श कुटुम्ब का वर्णन कर रहे हैं। जो कुटुम्ब ऐसा होगा वह निस्संदेह आदर्श स्वरूप ही होगा। कथन का अभिप्राय यह है कि पुत्र पिता के अनुकूल कार्य करें इस वाक्य का अर्थ कन्या भी माता-पिता के अनुकूल कर्म करें तथा भाई भाई से डरे ना करें इसका अर्थ है भाई बहन से और बहन भाई से डरे ना करें। पत्नी पति से मृदु भाषण करें इसमें पति भी पत्नी से मीठा भाषण करें यह अर्थ है। इस प्रकार होने पर परिवार एक आदर्श स्थिति को प्राप्त होगा।

3.9 सामाजिक एकता का सन्देश

इस सूक्त में आदर्श समाज एवं परिवार के निर्माण के साथ मानव समाज में एकता के सूत्र भी दिए गए है। यह सन्देश दिया गया कि मानव समाज में भेदभाव समाप्त होकर एकता का भाव प्रसारित होना चाहिए। इस सूक्त के मन्त्र सं0 05 एवं 06 में सामाजिक एकता का सन्देश दिया गया है -

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्क्रणोमि ॥[16]

(वृद्धों का सम्मान करने वाले, उदार चित्त वाले, उत्तम सिद्धि वाले, एक छत के नीचे काम करने वाले, विरोध न करने वाले, एक दूसरे से प्रेम पूर्वक भाषण करने वाले मनुष्यों आगे बढ़ो। मैं तुमको साथ पुरुषार्थ करने वाले और उत्तर विचार से युक्त मन वाले करता हूँ।)

---

[15] अथर्ववेद 3.30.2-3
[16] अथर्ववेद 3.30.5

इस मन्त्र के प्रत्येक पद में से सामाजिक एकता का सन्देश दिया है -

ज्यायस्वन्तः -बड़ों का सम्मान करने वाले बनो वृद्धों का सम्मान करो।
मा वि यौष्ट = विभक्त मत बनो तथा अपने में विभेद न बढाओ।
साधुराः चरन्तः - एक छत के नीचे रह कर कार्य करो।
सध्रीचीनाः -कर्म करने के लिए एक साथ प्रयास करो अर्थात् जो कुछ भी तुम करो साथ-साथ करो
संराधयन्तः - मिलकर सिद्धि के लिए यत्न करने वाले

अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त -परस्पर प्रेम पूर्वक भाषण करो जब कभी एक दूसरे से बात करनी है अथवा प्रेम पूर्वक कार्य करो। आपस में झगड़ा ना करो।

जब एक साथ एक मानव समाज में रहना है तो हमारे भोजन एवं जलपान का स्थान भी साथ साथ होना चाहिए जिस प्रकार एक घर में माता पिता भाई बहन पुत्र पत्नी इत्यादि का भोजन एवं जलपान साथ साथ होता है उसी प्रकार समाज में भोजन एवं जल का स्थान सभी वर्गों के लोगों के लिए समान होना चाहिए उसमें भेदभाव नहीं होना चाहिए।इस सूक्त के इस सूक्त के मन्त्र सं0 06 में कहा गया है -

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥[17]

(तुम्हारे जल का स्थान एक हो और तुम्हारे भोजन का स्थान भी एक हो। मैं तुम सबको एक छत के नीचे रखता हूँ। तुम मिलकर एक ही ईश्वर - अग्नि की उपासना करो।जिस प्रकार रथ की नाभि में सभी आरे जाकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार सभी वर्णों के लोग समाज में आकर एक हो जाएं।)

इस मन्त्र में समाज के सभी वर्गों के लोगों के लिए समान खानपान एवं समान उपासना पद्धति का उपदेश दिया गया है। इस मन्त्र में सामाजिक एकता को प्रदर्शित करता हुआ एक उदाहरण भी प्रस्तुत किया गया है कि समाज के सभी वर्गों के लोग एक दूसरे के साथ एकता से इस प्रकार रहें कि जिस प्रकार एक रथ के आरे उसकी नाभि से संयुक्त रहते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार रथ की नाभि में सभी आरे जाकर एक हो जाती है उसी प्रकार समाज के सभी लोग समाज रूपी नाभि में जाकर एक होने चाहिए क्योंकि जैसे आरों पृथक् पृथक् होने पर जिस प्रकार रथ का अस्तित्व नहीं रहता उसी प्रकार मनुष्यों में भेदभाव होने पर समाज की सत्ता समाप्त होने लगती है।

इस सूक्त के सप्तम मन्त्र में समाज के लोगों में परस्पर सहयोग की भावना का उपदेश दिया गया-

संवननेन सर्वान् एकनुष्ठीन् कृणोमि -[18] यहाँ संवनन शब्द का अर्थ है उत्तम प्रकार की प्रेम पूर्वक सहायता करना। वन् धातु का अर्थ है प्रेम पूर्वक दूसरे की सहायता करना है। अपने को पारितोषिक प्राप्त हो ऐसी इच्छा करते हुए मानव समाज की सेवा करना उचित नहीं है अपितु समाज के कल्याण के लिए दूसरों की सेवा करना ही परमेश्वर की भक्ति है इस प्रकार का सेवा भाव मन में धारण करना ही सच्चे अर्थों में सेवा कहलाती है। सहयोग एवं सेवा से सामाजिक

[17]अथर्ववेद 3.30.6
[18] अथर्ववेद 3.30.7

एकता सुदृढ होती है।

3.10 कृमिनाशनम् सूक्त : सामान्य परिचय एवं मूल पाठ

कृमिनाशनम् सूक्त अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के बत्तीसवाँ सूक्त है। इस सूक्त में यह भी बताया गया कि सूर्य की किरणें कृमियों का नाश करने की क्षमता है। कृमिनाशनम् सूक्त के मुख्य प्रतिपाद्यों में रोगकृमियों के प्रकार, मन्त्रविद्या द्वारा कृमि नाश एवं रोग के कृमियों में विषस्थानों की चर्चा है।

इस सूक्त का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

सूक्त : अथर्ववेद - 2.32

देवता : आदित्य

छन्द : अनुष्टुप्, 1 त्रिपाद्भुरिग्गायत्रीः, 6 चतुष्पान्निचृदुष्णिक्।

ऋषि : कण्व

कुल मन्त्र : 06

मूल पाठ :-

उद्यन्न् आदित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥1॥

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥2॥

अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥3॥

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥4॥

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥5॥

प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि।
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥6॥

3.11 सूर्य किरण में कृमिनाश की क्षमता

इस सूक्त के सर्वप्रथम मन्त्र में यह बताया गया कि सूर्य की किरणें कृमियों का नाश करती हैं इसलिए उदित होते हुए एवं अस्त होते हुए सूर्य से कृमियों के नाश की कामना की गई है -

उद्यन्न् आदित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥[19]

[19] अथर्ववेद 2.32.1

अर्थ (ये क्रिमयःगवि अन्तः) जो क्रिमि भूमि पर हैं (क्रिमीन् उद्यन आदित्य हन्तु) उन क्रिमियोका हृदय होता हुआ सूर्य नाश करे और (निम्रोचन रश्मिभि. हन्तु)अस्त को जाता हुआ सूर्य भी अपने किरणो से उन क्रिमियों का नाश करे॥

सूर्य उदय होने के बाद से लेकर अस्त होने तक अपने किरणों से रोगोत्पादक क्रिमियो का नाश करता है। ये क्रिमि भूमि पर रहते हैं। सूर्य किरणों में ऐसी जीवन शक्ति है कि जिससे सभी प्रकार के रोगकृमि दूर होते हैं। इसलिये जिस स्थान पर रोगकृमि बढ़ने से रोग उत्पन्न हुए हों उस स्थान में सूर्य किरण पहुँचाने से वे सब रोग दूर हो जाते हैं। जिस घर में से क्रीमी उत्पन्न हुए हो, उस पर के छप्पर में से सूर्य किरण विपुल प्रमाण में उस घर में प्रवेश कराने से वहाँ के रोग दूर हो जाते है क्योंकि रोगकृमियों को हटाने की क्षमता सूर्य की किरणों में विद्यमान है।

3.12 रोगकृमियों के प्रकार

इस सूक्त के द्वितीय मन्त्र में रोगकृमियों के कुछ प्रकार बताए गए है -

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥[20]

((विश्वरूपं) अनेक रूप वाले (चतुरक्षं) चार आँखवाले , (सारंगं अर्जुनं क्रिमि) रंगने वाले श्वेत रंग क्रिमि होते हैं। (अस्य पृष्टीः शृणामि) इनकी हड्डियो को में तोडता हूँ (अपि यत्शिरःवृश्यामि) इन जो सिर हैं वह भी तोड़ता हूँ॥)

इस मन्त्र में जिन रोगकृमियों के प्रकार की चर्चा हुई है वे निम्नलिखित हैं -

- सारंग - रेंगने वाला कृमि।
- अर्जुन - श्वेत रंगवाला कृमि
- चतुरक्ष- चार नेत्रवाला, चारों तरफ जिसके शरीर में नेत्र है|
- विश्वरूप.- विविध रंगरूपवाला।यह विविध रखवाला कृमि है अर्थात् चित्र विचित्र वर्णवाला धब्बे जिसके शरीर पर हैं।

3.13 मन्त्रविद्या द्वारा कृमि नाश

इस सूक्त में कृमियों के नाश के उपायों पर चर्चा हुई है जैसे सूर्य किरण आदि उसी प्रकार मन्त्र विद्या के द्वारा भी कृमियों के नाश का संकेत इस सूक्त में किया गया है -

अत्रिवद्वःक्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥[21]

((क्रिमयः) हे क्रिमियों! (अत्रिवत् कण्ववत् जमदग्निवत्) अत्रि, कण्व् और जमदग्नि के समान (वःहन्मि) मन्त्र विद्या से तुमको मार डालता हूँ। (अहं अगस्त्यस्य ब्रह्मणा) अगस्त्य की मन्त्र विद्या से (क्रिमीन्संपिनष्मि) त्रिमियो को पीस डालता हूँ)

[20] अथर्ववेद 2.32.2
[21] अथर्ववेद 2.32.3

कथन का अभिप्राय यह है कि यहाँ चार ऋषियों का नामोल्लेख किया गया है - अत्रि, कण्व् जमदग्नि एवं अगस्त्य। यह सम्भव है कि ये ऋषि हवन यज्ञादि करते थे जिनमें अग्नि एवं मन्त्र का प्रयुक्त होता था। आज आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है ध्वनि चिकित्सा (मन्त्र विद्या) रोगकृमियों को नष्ट करने में सहायक है साथ ही हवन के धूम्र एवं आग से रोगकृमि नष्ट हो जाते है जिसे आज होमोथैरेपी कहा जा रहा है।

3.14 रोगकृमियों के विषस्थान

रोग के कृमियों में विष कहाँ कहाँ पाया जाता है? इस तथ्य का ज्ञान भी हमें इस सूक्त से होता है। इन क्रिमियों के शरीर में एक स्थान ऐसा होता है कि जहा विष रहता है। यह विष ही मनुष्य के शरीर में पहुंचता है और वहाँ विविध रोग उत्पन्न करता है। इस सूक्त के छठे एवं दूसरे मन्त्र में रोगकृमियों के विषस्थान की चर्चा की गई है -

1.सींग 2.हड्डी 3.सिर

प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि।
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥[22]

((याभ्यां वितुदायसि) जिनसे तू कटता है (ते शृङ्गे प्रशृणामि) इन तेरे दोनों सींगो को तोड डालता हूँ। (यः ते विषधानः) जो तेरा विषका स्थान है (ते कुषुम्भ भिनद्मि) ऐसे तेरे विष के आशय को मैं तोडता हूँ।।)

शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥[23]

(अस्य पृष्टीः शृणामि) इनकी हड्डियो को में खोडता हू (अपि यत्शिरःवृश्यामि) इन जो सिर हैं वह भी तोड़ता हूँ।।

3.15 सारांश

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अथर्ववेद के ये तीनों सूक्त – राष्ट्राभिवर्धन सूक्त, सामनस्य सूक्त, कृमिनाशनम् सूक्त निस्सन्देह लोकल्याणकारी सूक्त है। राष्ट्राभिवर्धन सूक्त में एक आदर्श राष्ट्र का चित्र उपस्थापित किया गया है।वेद में राष्ट्र शब्द राजते तत् राष्ट्रं अर्थात् जो चमकता है वह राष्ट्र अर्थ का बोधक है अर्थात् जो मनुष्यों का समुदाय भूमण्डल पर अपने परिश्रम से चमकता है तथा अन्य लोगों की आँख को अपनी ओर खींच सकता है वही वेद की दृष्टि से राष्ट्र कहलाता है। इस सूक्त में देश के नागरिकों को सन्देश दिया गया है कि कोई भी राष्ट्र तभी राष्ट्र कहलाता है जब उसमें संगठन हो। राष्ट्र सभी को साथ में लेकर चलने वाली भावना तथा एकता से बनता है। इस सूक्त में आदर्श राजा के गुणों की भी चर्चा की गई है। राजा अपनी भोग के लिए नहीं अपितु राष्ट्रहित करने के लिए राज गद्दी पर बैठता है। इस प्रकार यह सूक्त राष्ट्र तथा नागरिकों के कल्याण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व का है।

सामनस्य सूक्त का उद्देश्य है मन को शुभ संकल्पमय करना। मन के अधीन सम्पूर्ण इन्द्रियां होती है। इसलिये जैसे मन के विचार होते है वैसे ही इन्द्रियों की प्रवृत्ति होती है। इस मन शुद्ध होना

[22] अथर्ववेद 2.32.6
[23] अथर्ववेद 2.32.6

बहुत जरुरी है। इस सूक्त में सन्देश दिया गया है कि समाज के लोगों का के आपस में व्यवहार कैसा होना चाहिए जैसा गाय अपने नए जन्म लिए हुए बिछड़े के साथ प्रेम करती है। सूक्त निर्देश करता है कि सामाजिक एकता बढ़ाने के लिए विशुद्ध हृदय एवं मन की आवश्यक्ता होती है। समाज के प्रति मनुष्य का व्यवहार ऐसा हो कि जिससे कोई परस्पर द्वेष ना करें। इस सूक्त में आदर्श परिवार की प्रारूप प्रदान किया गया है कि किसी भी परिवार में सुख एवं समृद्धि तभी आ सकती है जब सभी परिवार के सभी व्यक्ति एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्य एवं प्रेम का व्यवहार करते है। साथ ही सूक्त में यह सन्दे भी दिया गया कि मानव समाज में भेदभाव समाप्त होकर एकता का भाव प्रसारित होना चाहिए। अतः यह सूक्त सामाजिक महत्त्व की दृष्टि से उपयोगी है।

कृमिनाशनम् सूक्त स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त प्रासंगिक है क्यों कि यह रोग को उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं पर चर्चा करता है। इस सूक्त में बताया गया है कि सूर्य की किरणों में कृमियों का नाश करने की क्षमता है। कृमिनाशनम् सूक्त में रोगकृमियों के प्रकार, मन्त्रविद्या द्वारा कृमि नाश एवं रोग के कृमियों में विषस्थानों का अत्यन्त ही सारगर्भित एवं तर्कविपूर्ण विश्लेषण है जो मानव समाज के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है।

इस प्रकार ये तीनो सूक्त ही राष्ट्रीय,सामाजिक एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से पूर्णरूप से उपयोगी है।

3.16 शब्दावली

- **अभिवर्तमणि -** अभिवर्तमणि का अर्थ है – अभितो वर्तते चक्रम् अनेनेति (सायणभाष्य)। चारों तरफ (अप्रतिहत गति से) घूमने वाली मणि। देवों का राजा इन्द्र है, उनका पुरोहित बृहस्पति इन्द्र के के शरीर पर यह मणि बाँधता है।
- **अभिराष्ट्रः-** जिसके चारों ओर राष्ट्र का ही विचार हो वही आदर्श राजा होता है। राजा अपने राष्ट्र में रहे या ना रहे अथवा राष्ट्र के बाहर हो। उसका मन में हमेशा राष्ट्र के हित का ही विचार होना चाहिए।
- **असपत्नः** - जिस राजा का राष्ट्र के अंदर कोई प्रति पक्षी या विरोधी ना हो वही राजा आदर्श राजा होता है।
- **सपत्नहा-** प्रति पक्षी का नाश करने वाला राजा अर्थात् प्रति पक्षी का पराभव करने वाला राजा आदर्श राजा होता है। इसी से राष्ट्र में शान्ति एवं विकास सम्भव हो पाता है।
- **वृषा -** बलवान सब प्रकार की बलों संयुक्त राजा होना चाहिए अन्यथा वह पराभव को प्राप्त हो जाता है।
- **अभिवर्तमणि** - शत्रु के हमले होने पर उनको सहन करके अपने स्थान से पीछे हटने वाला
- **सामनस्य-** सामनस्य का अर्थ है - शुभ संकल्प से युक्त मन वाला होना।
- **सहृदय (स-हृदय) -** हृदय के भावों समानता| अर्थात् दूसरे के दुःख से दुःखी और दूसरे के सुख से सुखी होना।
- **ज्यायस्वन्तः** -बड़ों का सम्मान करने वाले बनो वृद्धों का सम्मान करो।

- **मा वि यौष्ट** = विभक्त मत बनो तथा अपने में विभेद न बढाओ।
- **सारंग -** रेंगने वाला कृमि को सारंग कहा जाता है।
- **अर्जुन** - श्वेत रंगवाला कृमि को अर्जुन कहा जाता है।
- **चतुरक्ष-** चार नेत्रवाला, चारों तरफ जिसके शरीर में नेत्र है ऐसे कृमि को चतुरक्ष कहा जाता है।

3.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जिला वलसाड, 2011.
- त्रिवेदी, क्षेमकरणदास, अथर्ववेद (द्वितीय खण्ड हिन्दी भाष्य) , विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली 2017
- शर्मा, रामस्वरूप, अथर्ववेद (सायण भाष्य सहित), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2011.
- Joshi, K.L.Atharva Veda Samhita (With Bhashya Of Sayanacharya), Parimal Publication, Delhi, 2015.

3.18 बोध प्रश्न

1. अथर्ववेद का राष्ट्रीय,सामाजिक एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्त्व सिद्ध किजिए?
2. अभिवर्तमणि क्या संक्षिप्त टिप्पणी किजिए?
3. राष्ट्राभिवर्धनम् सूक्त के आधार पर आदर्श राष्ट्र के निर्माण में राजा की भूमिका निश्चित किजिए?
4. सामनस्य सूक्त के आधार पर सामाजिक एकता के लिए आवश्यक तत्त्वों का विश्लेषण किजिए?
5. कृमिनाशन सूक्त के आधार रोगकृमियों के प्रकार विषस्थान एवं कृमियों के नाश की विविध विधियों की समीक्षा किजिए?

इकाई 4 काल, उच्छिष्ट, स्कम्भ, ज्येष्ठ ब्रह्म सूक्तों का प्रतिपाद्य एवं दार्शनिकता

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 काल सूक्त का प्रतिपाद्य एवं दार्शनिकता

4.3 उच्छिष्ट सूक्त का प्रतिपाद्य एवं दार्शनिकता

4.4 स्कम्भ सूक्त का प्रतिपाद्य एवं दार्शनिकता

4.5 ज्येष्ठब्रह्म सूक्त का प्रतिपाद्य एवं दार्शनिकता

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 बोध प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

- अथर्ववेद में कही गई परम सत्ता (Absolute Reality) की अवधारणा के विभिन्न स्वरूपों सैद्धान्तिक विश्लेषण कर सकेगें।
- काल सूक्त के आधार पर अथर्ववेदीय काल के व्यापक विचार को जान पायेंगें।
- उच्छिष्ट सूक्त विश्व के मूल कारण के रूप परम सत्ता अर्थात् ब्रह्म के उच्छिष्ट अंश की भूमिका की समीक्षा कर पायेंगें।
- विश्व के मूल आधार के रूप में स्कम्भ सूक्त का विश्लेषण कर पायेंगें।
- ज्येष्ठब्रह्म सूक्त के आधार पर ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति एवं लय का ज्ञान कर पायेंगें।
- 6. परमसत्ता के रूप में काल, उच्छिष्ट स्कम्भ एवं ज्येष्ठब्रह्म के सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेगें।

4.1 प्रस्तावना

'दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम्' परिभाषा के अनुसार जिस शास्त्र अथवा विचार के द्वारा जगत् के पीछे छिपे सिद्धान्तों, आत्मा, परमात्मा, प्रकृति आदि परोक्ष विषयों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उसे 'दर्शन' कहते हैं। जगत् में उपलब्ध समस्त प्राकृतिक पदार्थों की उत्पत्ति कैसे हुई? इनको

किसने बनाया? पृथ्वी, आकाश, सूर्य, अग्नि उषा आदि का निर्माण किसने किया? वह कौन सा वृक्ष अथवा कौन सी लकड़ी थी जिससे आकाश तथा पृथ्वी का निर्माण हुआ? उनका उत्पत्ति-क्रम क्या था? निर्माता का आधार क्या था? सृष्टि विषयक घटनाओं का क्रम क्या था? इत्यादि जिज्ञासाओं तथा प्रश्नों का चिन्तन ऋषियों ने किया है। ये प्रश्न निश्चित ही दार्शनिक थे और इनके समाधान भी वैदिक ऋषियों ने उपस्थित किये। ये उपाय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सारगर्भित होने के कारण भारतीय दर्शन के आधार बने। सृष्टि-उत्पत्ति के चिन्तन की आगे की परम्परा में वैदिक ऋषियों का विश्वास जगत् के कर्तृत्व में बहुदेववाद की धारणा से पृथक् होता गया। उनका सन्देह था कि जब विभिन्न देवता एक-दूसरे को उत्पन्न करने वाले हैं तो ये जगत् के मूल कारण नहीं हो सकते क्योंकि मूल कारण तो एक ही होता है। दशम मण्डल में कहा गया है कि इस द्यावा तथा पृथ्वी का निर्माण देवता नहीं कर सकते, देवता इसके निर्माण में समर्थ भी नहीं हो सकते।[1] वेद इस प्रकार के दार्शनिक सूक्तों का आगार है। सम्पूर्ण वेद में दार्शनिक विचारधाएँ उपलब्ध होती हैं। अथर्ववेद में सृष्टि के मूल कारण को लेकर विशद चिन्तन हुआ है। अथर्वेवेद के काल (19.53), उच्छिष्ट (11.9), स्कम्भ (10.7) एवं ज्येष्ठ ब्रह्म (10.8) इसी प्रकार के सूक्त हैं जिनमें ब्रह्माण्ड के उद्भव एवं विकास के मूल कारण की व्याख्या क्रमशः काल से, उच्छिष्ट अर्थात् ब्रह्म के अवशिष्ट अंश से, स्कम्भ अर्थात् सर्वाधार ब्रह्म से एवं ज्येष्ठ ब्रह्म अर्थात् बडे ब्रह्म से की गई है। आईए इस इकाई में हम अथर्ववेद के काल (19.53), उच्छिष्ट (11.9), स्कम्भ (10.7) एवं ज्येष्ठ ब्रह्म (10.8) के प्रतिपाद्य एवं दार्शनिकता का अध्ययन करते हैं।

4.2 काल सूक्त का प्रतिपाद्य एवं दार्शनिकता

4.2.1 काल सूक्त का सामान्य परिचय

काल सूक्त का सामान्य परिचय अधोलिखितानुसार है –

सूक्त :- अथर्ववेद 19 वाँ काण्ड 53 वाँ सूक्त

देवता :- काल

ऋषि :- भृगु

छन्द :- त्रिष्टुप्, 5 बृहती, 6-10 अनुष्टुप्।

कुल मन्त्रः- 14

4.2.2 काल का अर्थ एवं स्वरूप

कल् धातु + अच् प्रत्यय। इसके दो अर्थ हैं - कलयति आयुः कल् संख्याने पचाद्यच्। कालयति सर्वाणि भूतानि कल् प्रेरणे पचाद्यच्। अर्थात् जिससे आयु का मापन किया जाए अथवा जिससे समस्त पदार्थ उत्पन्न एवं विलीन होते है वह काल कहलाता है। विष्णुपुराण के अनुसार जो उपन्न करने वालों को भी उपन्न करने वाला है वह जगत् का आश्रय काल कहा जाता है –

जन्यानां जनकः कालो जगतामाश्रयो मतः।[2]

अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त के 14 मन्त्रों में काल के व्यापक स्वरूप का वर्णन है। इस सूक्त में जगत् के कारण के रूप कालरूप परमात्मा स्वीकार किया गया है तथा काल से ही

[1] ऋग्वेद 10.31.8

[2] विष्णुपुराण 1/2/28

सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति तथा उसमें प्रतिष्ठित बताते हुए काल का ब्रह्मरूप में वर्णन किया गया है। यह समस्त जगत् काल से उत्पन्न हुआ है और काल में विद्यमान हैं। काल ही परमार्थ तत्त्व ब्रह्म होकर परम स्थान सत्यलोक में स्थित है एवं चतुर्मुख ब्रह्मा को धारण करता है –

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम्।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम्।।[3]

काल रूप परमात्मा से प्रजापति, प्रजा तथा कश्यप की उत्पत्ति हुई है। सृष्टि के आरम्भ में काल ने प्रजापति को उत्पन्न किया है और प्रजाओं को भी काल ने ही रचा है। यह काल स्वयंभू है, अर्थात् काल के अतिरिक्त और कोई दूसरा काल नहीं है –

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।
स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत।।[4]

यूरोप के देशों में यह ज्ञान आधुनिक काल में हुआ। वे पहले पृथ्वी को स्थिर मानते थे। पृथ्वी को गतिशील बताने वाले वैज्ञानिक उत्पीड़ित किए गए। अथर्ववेद ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष प्राचीन है। अथर्व के ऋषि पृथ्वी के गतिशील गुण से सुपरिचित थे। अथर्ववेद का कालचिन्तन गम्भीर विचार के योग्य है। बड़ी बात है कि यहाँ हजारों वर्ष पहले काल धारणा थी। काल का विवेचन था। ऐसे जटिल दार्शनिक व वैज्ञानिक विषयों पर चिन्तन था। प्रस्तुत सूक्त में काल सम्बन्धी वैदिक अवधारणा का अध्ययन करने जा रहे हैं।

4.2.3 काल की अश्व के रूप में संकल्पना

अश्व गति का प्रतीक होता है एवं काल भी गतिशील होता है अतः इस सूक्त में काल को अश्व के रूप प्रस्तुत किया है। सायण भाष्य करते हुए लिखते हैं कि भूत भविष्य एवं वर्तमान काल की वस्तुओं व्याप्त करने अश्व ही काल है -

अश्नुते व्याप्नोति भूतभविष्यत्वर्तमानकालवर्तिनीवस्तुनीति अश्वः।[5]

काल अश्व इस विश्वरथ का वाहक है। यह सात किरणों (सात ऋतुओं) व सहस्त्रों आंखों वाला है। यह कभी जर्जर या बूढ़ा नहीं होता। सभी लोक इसके चक्र हैं। इस पर कवि ही आरोहण करते हैं। यहाँ अश्व गति का पर्याय है। गति के कारण ही अश्व की प्रतिष्ठा है। कवि(विद्वान) को ही इस रथ पर बैठने का पात्र बताया गया है। काल की वास्तविक अनुभूति या कालबोध के लिए कवि (विद्वान) जैसी सम्वेदनशीलता चाहिए –

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्त्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा।।[6]

4.2.4 काल संवत्सरचक्र के रूप में

इस सूक्त में काल सम्वत्सर चक्र के रूप में कल्पना की गई है। कालचक्र का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह कालरूपी परमात्मा सात ऋतुरूपी चक्रों को क्रमशः धारण करते हैं। इस

[3] अथर्ववेद 19.53.9
[4] अथर्ववेद 19.53.10
[5] अथर्ववेद 19.53.1 पर सायणभाष्य
[6] अथर्ववेद 19.53.1

संवत्सर की ऋतुसंधिकालरूप सात नाभियाँ हैं। इसका सूक्ष्म अविनश्वर तत्त्व अमृत है। यह संवत्सररूप, सबका आदिभूत देव, नित्यज्ञानरूपकाल, परमात्मा-इन अनेक नाम और रूपों से व्याकृत चराचरात्मक जगत् को प्रकट करता हुआ संहार कर डालता है और संहार करता हुआ भी सबमें व्याप्त होकर स्थिर रहता है –

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः।।[7]

4.2.5 काल की ब्रह्म के रूप में सर्वव्यापकता

इस सूक्त में सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा को ही तप, ज्येष्ठ, ईश्वर, पिता तथा प्रजापति आदि रूपों में बतलाया गया है। कालरूप परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गयाहै कि कि कालरूपी परमात्मा में जगत् को रचने का पर्यालोचनरूपी तप प्रतिष्ठित है तथा उसी में सबका आदिभूत हिरण्यगर्भरूपी तत्त्व ज्येष्ठ समाहित है। काल में ही ब्रह्म समाहित है। काल ही सम्पूर्ण जगत् का स्वामी है। जो काल प्रजा की रचना करने वाले चतुर्मुखी ब्रह्मा अर्थात् प्रजापति का भी पिता है।

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजायतेः।।[8]

सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा में ही मन, प्राण, नाम आदि समाविष्ट बताया गया है तथा समस्त प्रजा के कार्यो का कारण भी इसे ही माना गया है।

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः।।[9]

4.2.6 काल की सर्जनात्मकता

काल सूक्त में समस्त जगत् के कारणभूत काल रूप परमात्मा से ही पृथ्वी की उत्पत्ति तथा भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान को उसी पर आश्रित बताया गया है -

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते।।[10]

सृष्टि के आरम्भ में कालरूप परमात्मा से प्रजापति, प्रजा तथा कश्यप की उत्पत्ति हुई है। काल सूक्त में काल को स्वयम्भू बतलाया गया है। अर्थात् काल के अतिरिक्त और कोई दूसरा काल नहीं है -

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।
स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत।।[11]

---

[7] अथर्ववेद 19.53.2
[8] अथर्ववेद 19.53.8
[9] अथर्ववेद 19.53.7
[10] अथर्ववेद 19.53.5
[11] अथर्ववेद 19.53.10

इस सूक्त के अनुसार कालरूपी परमात्मा से ब्रह्माण्ड के आधारभूत जल प्रकट हुए। उस काल से ही यज्ञ कर्म, कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि तप और पूर्व आदि दिशाएँ प्रकट हुई। प्रेरक काल के द्वारा ही सूर्य उदय को प्राप्त होता है -

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः।।[12]

इस सूक्त के अनुसार सर्वजगत् के कारणभूत कालरूप परमात्मा से ही भूत, भविष्यत्, पुत्र, वेदों आदि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है -

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा।
कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ।।[13]

4.2.7 काल ब्रह्माण्ड के संचालक के रूप में

काल सूक्त में काल को ब्रह्माण्ड का संचालक बताया गया है। काल ही सीमा जिसमें दिन और रात बनते हैं समस्त ऋतुएं आती हैं -जाती हैं। इस सूक्त कालरूप परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए उसी पर वायु, पृथिवी, द्युलोक आदि को आश्रित बताया गया है। काल से वायु बहता है, काल ने ही विशाल पृथिवी को दृढ़ता से स्थापित कर रखा है और विशाल द्युलोक भी कालरूप आधार में स्थापित है –

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही।
द्यौर्मही काल आहिता।।[14]

4.3 उच्छिष्ट सूक्त का प्रतिपाद्य एवं दार्शनिकता

4.3.1 उच्छिष्ट सूक्त का सामान्य परिचय

उच्छिष्ट सूक्त का सामान्य परिचय अधोलिखितानुसार है –

सूक्त :- अथर्ववेद 11 वाँ काण्ड 09 वाँ सूक्त
देवता :- उच्छिष्ट
ऋषि :- अथर्वा
छन्द :- अनुष्टुप्, 6 पुरोष्णिक् बाहर्तपरा अनुष्टुप्, 21 स्वराट् अनुष्टुप् ,22 विराट् पथ्या बृहती।
कुल मन्त्रः- 27

उच्छिष्ट ब्रह्म का अर्थ - अथर्ववेद के 11 वें काण्ड के 09 वें सूक्त के 27 मन्त्रों में उच्छिष्ट ब्रह्म का वर्णन है। उच्छिष्ट का अर्थ है - उत् + शिष्ट, बचा हुआ, शेष पदार्थ, जो भोजन आदि कार्य के बाद बचा रहता है। परमात्म सत्ता ने अपने अव्यक्त गुणातीत स्वरूप में से जो अंश शेष है वही उच्छिष्ट ब्रह्म है जिससे नामरूपात्मक सृष्टि बनी हुई है।

यहाँ पर उच्छिष्ट से अभिप्राय है - जो सारा संसार बनाने के बाद भी बचा रहता है, वह ब्रह्म है।

---

[12] अथर्ववेद 19.53.11
[13] अथर्ववेद 19.53.10
[14] अथर्ववेद 19.53.12

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है कि परमात्मा के 1/4 अंश से यह सारा संसार बना है। उसका 3/4 अंश आकाश में व्याप्त है। इसका अभिप्राय यह है कि इस सारे दृश्य जगत् को देखकर हम ब्रह्म, की शक्ति की एक-चौथाई अंश का ही साक्षात्कार कर पाते हैं। उसकी शक्ति का तीन चौथाई अंश अदृश्य है –

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥[15]

उसको ही अथर्ववेद में उच्छिष्ट कहा गया है। इस उच्छिष्ट के आधार पर ही बृहदारण्यक् आदि उपनिषदों में इस संसार के विषय में 'नेति नेति' (यह ब्रह्म नहीं है) का विचार प्रस्तुत किया गया है- **अथात आदेशो नेति नेति।**[16] उच्छिष्ट ब्रह्म के विषय में कहा गया है कि वह प्राण का पौत्र है, किन्तु अन्य सभी का पिता या पितामह है – **पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः।**[17]

4.3.2 उच्छिष्ट ब्रह्म से नामरूपात्मक जगत् की उत्पत्ति

उच्छिष्ट ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि नाम और रूप उच्छिष्ट पर आश्रित हैं। 'नामरूपात्मकं जगत्' यह सारा संसार केवल नाम और रूप है। इसमें वस्तुओं के विभिन्न नाम हैं और वस्तुओं का दृश्य रूप है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अद्वैतवेदान्त की दृष्टि से संसार को नाम-रूप-मात्र कहना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से संसार को नाम-रूपात्मक कहाँ जाता है –

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥[18]

4.3.3 उच्छिष्ट ब्रह्म से देवताओं की उत्पत्ति

उच्छिष्ट यह ब्रह्म का अव्यक्त रूप है। इससे ही सारे देवता, पुरुष, पितर, गन्धर्व, अप्सराएं और आकाश में रहने वाले देव एवं दिव्य विभूतियां उत्पन्न हुई हैं। सृष्टि की सभी वस्तुएं उच्छिष्ट से ही उत्पन्न हुई हैं –

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥[19]

इस सूक्त में उच्छिष्ट के विराट रूप का वर्णन किया गया है। उच्छिष्ट ब्रह्म महान् शक्ति है। उच्छिष्ट ब्रह्म चक्र की नाभि के तुल्य है। इसमें सारे देवता नाभि (केन्द्र) में अरे के तुल्य संबद्ध हैं। इसका अभिप्राय यह है कि उच्छिष्ट ब्रह्म सारे देवी-देवताओं को नियन्त्रित करने वाली शक्ति है। उसकी इच्छा के अनुसार सारे देवता कार्य करते हैं। उच्छिष्ट ब्रह्म में सारा संसार, सारे लोक, इन्द्र और अग्नि आदि समाए हुए हैं। उच्छिष्ट में धुलोक, पृथिवी, सारा प्राणिजगत्, जल, वायु, चन्द्रमा और समुद्र आदि स्थित हैं –

[15] यजुर्वेद 31.3
[16] बृहदारण्यक उपनिषद् 2.3.6
[17] अथर्ववेद 11.9.16
[18] अथर्ववेद 11.9.1
[19] अथर्ववेद 11.9.27

दृढो दृंह स्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥[20]

4.3.4 उच्छिष्ट ब्रह्म से समस्त लोकों की उत्पत्ति

अथर्ववेद का कथन है कि उच्छिष्ट ब्रह्म में धुलोक, 09 महाद्वीप, सारे समुद्र, सूर्य, अहोरात्र (दिन एवं रात) आदि स्थित हैं –

नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन् मयि ॥[21]

इसी प्रकार सारे भौतिक और अभौतिक पदार्थ प्राण-अपान, समस्त इन्द्रियाँ आदि तथा सभी प्रकार के आमोद-प्रमोद, आनन्द आदि उच्छिष्ट ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं –

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या।
आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये।[22]

4.3.5 उच्छिष्ट ब्रह्म से दिव्य गुण एवं प्राकृतिक उपादानों की उत्पत्ति

संसार में जितने भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं, उन सबकी स्थिति उच्छिष्ट में है। जैसे - ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र, धर्म-कर्म, भूतकाल, भविष्यत् काल, वीर्य, लक्ष्मी, बल, समृद्धि, ओज, संकल्प-विकल्प, क्षात्र धर्म, राष्ट्र, 6 द्वीप, संवत्सर, अन्न, ग्रह, हव्य पदार्थ आदि –

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥[23]

उच्छिष्ट ब्रह्म में ऋतु आदि से संबद्ध सभी तत्त्व विद्यमान हैं। जैसे- अर्धमास पक्ष), मास, आर्तव (ऋतु देवता), ऋतु आदि। इनके अतिरिक्त मेघ, विद्युत् , जलप्रवाह आदि भी उच्छिष्ट में हैं –

अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह।
उच्छिष्टे घोषिणीराप स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥[24]

इसके अतिरिक्त रेत, कंकड़, पत्थर, तृण, वृक्ष-वनस्पतियां, मेघ, विद्युत्, वर्षा आदि सभी उच्छिष्ट ब्रह्म में हैं। सभी प्रकार की समृद्धि आदि उच्छिष्ट में हैं। जैसे - सिद्धि, लाभ, वैभव, उत्तम समृद्धि आदि –

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥
राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः।[25]

---

[20] अथर्ववेद 11.9.04
[21] अथर्ववेद 11.9.14
[22] अथर्ववेद 11.9.25-26
[23] अथर्ववेद 11.9.17-18
[24] अथर्ववेद 11.9.20

4.3.6 उच्छिष्ट ब्रह्म से चारों वेद की उत्पत्ति

उच्छिष्ट ब्रह्म से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, (छन्दस्) और पुराण आदि की उत्पत्ति हुई है। साथ ही सभी देवों की उत्पत्ति भी उच्छिष्ट ब्रह्म से हुई है –

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥

4.3.7 उच्छिष्ट ब्रह्म से समस्त यज्ञों की उत्पत्ति

अथर्ववेद के इस सूक्त में छोटे और बड़े सभी यज्ञों की उत्पत्ति उच्छिष्ट ब्रह्म से बताई गई है। इसका अभिप्राय यह है कि सारे यज्ञ उस ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ही किए जाते हैं। इसी प्रसंग में यज्ञों की लंबी सूची दी गई है। यथा- राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अर्कमेध, अश्वमेध, विश्वजित् , एकाह (एक दिन चलने वाले यज्ञ) से लेकर 12 और 16 दिन तक लगातार चलने वाले यज्ञों का उल्लेख है –

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥[26]

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥[27]

4.4 स्कम्भ सूक्त का प्रतिपाद्य एवं दार्शनिकता

4.4.1 स्कम्भ सूक्त का सामान्य परिचय

स्कम्भ सूक्त का सामान्य परिचय अधोलिखितानुसार है –

सूक्त :- अथर्ववेद 10 वाँ काण्ड 07 वाँ सूक्त

देवता :- स्कम्भ आत्मा (अध्यात्म)

ऋषि :- अथर्वा क्षुद्र

छन्द :- अनुष्टुप्, 1 विराट् जगती, 2,8 भुरिक् त्रिष्टुप्, 7,13 पुरोष्णिक्, 10,14,16,18-29 उपरिष्टात् बृहती, 11,12,25,20,22,39 उपरिष्टात् ज्योति जगती, 17 त्र्यवसाना षटपदा जगती, 33 पराविराट् अनुष्टुप्, 21 बृहतीगर्भा अनुष्टुप्, 31 मध्ये ज्योति जगती, 32,34,36 उपरिष्टात् विराट् बृहती, 35 चतुष्पदा जगती, 3-6,9,38,42-43 त्रिष्टुप्, 41 आर्षी त्रिपदा गायत्री, 44 एकावसाना पञ्चपदा निचृत् पदपंक्ति द्विपदार्ची अनुष्टुप्।

कुल मन्त्रः- 44

4.4.2 स्कम्भ ब्रह्म का अर्थ एवं स्वरूप

स्कम्भ का अर्थ है आधार या भार सम्भालने वाला स्तम्भ। प्रश्न किया गया कि वह आधार

[25] अथर्ववेद 11.9.21-22
[26] अथर्ववेद 11.9.7
[27] अथर्ववेद 11.9.11

कौन सा है जिस पर सारी सृष्टि व्यवस्था टिकी हुई है। अथर्ववेद के 10 वे काण्ड के 07 वें सूक्त में में ब्रह्म को स्कम्भ और सर्वाधार बताया गया है। स्कम्भ का अर्थ है- आधार, आश्रय, रोककर रखने रखने वाला। संसार को रोककर रखने वाली कोई एक सत्ता है, वह है ब्रह्म। सबका आधार होने के कारण उसे स्कम्भ ब्रह्म या सर्वाधार ब्रह्म कहते हैं। इस सूक्त सर्वाधार ब्रह्म सूक्त भी कहा जाता है।

- स्कम्भ क्या है? इसका उत्तर अथर्ववेद के स्कम्भ सूक्त के प्रारम्भिक 10 मन्त्रों में दिया गया है। स्कम्भ के विषय में पूछा गया है कि वह कौन सी सत्ता या शक्ति है, जिसमें ऋत, सत्य, श्रद्धा और तप प्रतिष्ठित हैं –

कस्मिन् अङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन् अङ्ग ऋतमस्याध्याहितम्।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन् अङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥[28]

किस शक्ति से अग्नि, वायु और चन्द्रमा में प्रकाश आदि की क्षमता है? द्यु-लोक, भू-लोक और अन्तरिक्ष-लोक किसमें स्थित हैं? मास, ऋतु, वर्ष आदि किसमें स्थित हैं? इसका उत्तर है - जिसमें ऋत, सत्य, अग्नि, वायु, वर्ष आदि स्थित हैं, वह सत्ता या शक्ति स्कम्भ ब्रह्म या सर्वाधार ब्रह्म है-

यत्र लोकाम्श्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः।
असच्च यत्र सच्चान्त स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥[29]

आगे इसी बात को स्पष्ट किया गया है कि जिस शक्ति को स्कम्भ ब्रह्म कहते हैं, वह इन्द्र है। इन्द्र विश्वव्यापी ऊर्जा (Universal Energy) है। उसमें सारे लोक, ऋत, तप आदि स्थित हैं। एक मन्त्र में स्कम्भ ब्रह्म के अनेक नाम गिनाए गए हैं। ये हैं - ब्रह्म, परमेष्ठी, प्रजापति, ज्येष्ठ ब्रह्म। साथ ही कहा गया है कि जो व्यक्ति मनुष्य के शरीर में विद्यमान ब्रह्म को ठीक ढंग से जान लेते हैं, वे स्कम्भ ब्रह्म को जान पाते हैं। स्कम्भ ब्रह्म को ही हिरण्यगर्भ, इन्द्र और यक्ष भी कहते हैं | इससे ज्ञात होता है कि वेदों में स्कम्भ या सर्वाधार ब्रह्म को ही इन्द्र, ब्रह्म, परमेष्ठी, प्रजापति, ज्येष्ठ ब्रह्म, यक्ष और हिरण्यगर्भ आदि नाम दिए गए हैं –

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम्।

ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥[30]
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥[31]

4.4.3 स्कम्भ ब्रह्म का व्यापक शरीर

स्कम्भ के विराट रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि स्कम्भ ने अपने एक अंग का विस्तार किया और सहस्रों रूप में हो गया। स्कम्भ में द्युलोक, अन्तरिक्ष और भूमि सब समाए हुए हैं। उसमें सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और वायु आदि स्थित हैं –

---

[28] अथर्ववेद 10.7.1
[29] अथर्ववेद 10.7.10
[30] अथर्ववेद 10.7.17
[31] अथर्ववेद 10.7.30

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन् अध्याहिता।[32]

विश्वव्यापी वैश्वानर अग्नि उसका सिर है। अंगिरा आदि ऋषिगण उसके चक्षु हैं। जीव-जन्तु उसके अंग हैं। ब्रह्म उसका मुख है, मधुकशा विद्या उसकी जीभ है। विराट उसका स्तन (थन) है। समुद्र और चारों दिशाएं उसकी नाड़ियां हैं। उसमें सदा यज्ञ हो रहा है। उसमें अमृत और मृत्यु दोनों का निवास है। वह सत्ता का स्कम्भ अर्थात् आधार है –

यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत।
विराजमूधो यस्याहुः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥[33]

यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥[34]

रुद्र, आदित्य और वसुगण उसमें समाए हुए हैं। भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों काल उसमें ही विद्यमान हैं-

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥[35]

4.4.4 समस्त लोकों आधार स्कम्भ ब्रह्म

अथर्ववेद का कथन है कि स्कम्भ ब्रह्म में ही सारे लोक, पांच कोश, ब्रह्म, असत् (प्रकृति) और सत् (जीवात्मा) का निवास है। स्कम्भ में ही भूमि, अन्तरिक्ष, द्युलोक, सूर्य, चन्द्रमा अग्नि और वायु आदि विद्यमान हैं। यही भाव अन्य मन्त्र में भी दिया गया है कि स्कम्भ द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष, सारी दिशाओं और उपदिशाओं को धारण किए हुए है और सारे संसार में व्याप्त है –

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम्।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ॥[36]

4.4.5 समस्त देवताओं आधार स्कम्भ ब्रह्म

अथर्ववेद का कथन है कि सारे 33 देवता उसके विभिन्न अंगों में प्रविष्ट हैं। ये 33 देवता स्कम्भ के खजाने की रक्षा करते हैं। स्कम्भ ब्रह्म के इस खजाने को ब्रह्मवेत्ता लोग ही जान पाते हैं।13 एक मन्त्र में ब्रह्म को महान् यक्ष बताया गया है और कहा गया है कि वह संसाररूपी सागर में सर्वत्र फैला हुआ है। जिस प्रकार वृक्ष की शाखाएं चारों ओर फैली हुई होती हैं, उसी प्रकार सारे देवता उसके अंगों में फैले हुए हैं। सारे देवता अपने हाथ-पैर वाणी आदि से उसकी ही सेवा करते हैं और उसे उपहार (बलि) देते हैं –

[32] अथर्ववेद 10.7.12
[33] अथर्ववेद 10.7.18-19
[34] अथर्ववेद 10.7.15
[35] अथर्ववेद 10.7.22
[36] अथर्ववेद 10.7.25

यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥[37]

4.4.6 समस्त वेदों का आधार स्कम्भ ब्रह्म

स्कम्भ सूक्त का कथन है कि स्कम्भ ब्रह्म से ही ऋग्वेद और यजुर्वेद निकले हैं। सामवेद उसके केश (बाल) के तुल्य है और अथर्ववेद उसका मुख है –

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥[38]

4.5 ज्येष्ठ ब्रह्म सूक्त का प्रतिपाद्य एवं दार्शनिकता

4.5.1 ज्येष्ठ ब्रह्म सूक्त का सामान्य परिचय

ज्येष्ठ ब्रह्म सूक्त का सामान्य परिचय अधोलिखितानुसार है –

सूक्त :- अथर्ववेद 10 वाँ काण्ड 08 वाँ सूक्त

देवता :- आत्मा (अध्यात्म)

ऋषि :- कुत्स

छन्द :- त्रिष्टुप्, 1 उपरिष्टात् विराट् बृहती, 2 बृहतीगर्भा अनुष्टुप्, 5 भुरिक् त्रिष्टुप्, 6,14,19-21, 23,25,29,31-34,41,43 अनुष्टुप्, 7 पराबृहती त्रिष्टुप्, 10 अनुष्टुप् गर्भा त्रिष्टुप्, 11 जगती, 12 पुरोबृहती त्रिष्टुप् गर्भार्षी पंक्ति 15,17 भुरिक् बृहती, 22 पुर उष्णिक्, 26 द्व्युष्णिक् गर्भा अनुष्टुप्, 30 भूरिक् त्रिष्टुप्, 39 बृहती गर्भा त्रिष्टुप्, 42 विराट् गायत्री।

कुल मन्त्र:- 44

4.5.2 ज्येष्ठ ब्रह्म का अर्थ एवं स्वरूप

अथर्ववेद 10 वें काण्ड के 08 वें सूक्त में ज्येष्ठ ब्रह्म का ही वर्णन है। इसमें ब्रह्म का स्वरूप, उसका विराट रूप, उसमें सभी लोकों की स्थिति, उसकी प्राप्ति के उपाय आदि का वर्णन है। ज्येष्ठ का अर्थ है- सबसे बड़ा। यहाँ अभिप्राय है- सबसे बड़ी सत्ता या शक्ति। ब्रह्म संसार में सबसे बड़ी शक्ति है। वह संसार का कर्ता, धर्ता और संहर्ता है।

ब्रह्म के स्वरूप के विषय में कहा गया है कि वह अत्यन्त सूक्ष्म है। इसलिए उसकी गति आदि पता नहीं चलती। उसका स्थिर रहना तो दिखाई पड़ता है, गति दिखाई नहीं पड़ती। वह बहुत दूर होने पर भी समीप है और समीप होने पर भी अज्ञान के आवरण के कारण बहुत दूर है –

अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥[39]

सिर को एक बड़ा कटोरा मानते हुए कहा गया है कि यह कटोरा उल्टा रखा हुआ है अर्थात् कटोरे का मुख नीचे की ओर है। अभिप्राय यह है कि शक्ति का स्रोत ऊपर सिर में है। उसमें ही

[37] अथर्ववेद 10.7.39
[38] अथर्ववेद 10.7.20
[39] अथर्ववेद 10.8.8

विश्व की सारी प्रतिष्ठा, यश-कीर्ति रखी हुई है। उसी में सात ऋषियों (5ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि) का निवास है। ये सात ऋषि उस सिररूपी महान् निधि की रक्षा करते हैं-

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥[40]

ज्येष्ठ ब्रह्म का काव्य ना कभी पुराना होता है और ना ही कभी मरता है अर्थात् ज्येष्ठ ब्रह्म नित्य नूतन है -

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥[41]

उस ज्येष्ठ ब्रह्म से ही सूर्य निकलता है और उसी में अस्त होता है, उससे बढ़कर और कोई नहीं है –

यतः सूर्यः उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥[42]

उसको ही सूर्य, अग्नि और हंस भी कहते हैं –

आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥[43]

वह पुरुष, स्त्री, कुमार और कुमारी आदि सभी रूपों को धारण करता है –

त्वं स्त्री त्वं पुमान् असि त्वं कुमार उत वा कुमारी ॥[44]

वह ज्येष्ठ ब्रह्म ही अवि नामक तत्त्व है, जिसके कारण सारे वृक्ष और वनस्पतियों में हरियाली है जिसे आधुनिक विज्ञान में क्लोरोफिल कहा जाता है –

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥[45]

4.5.3 ज्येष्ठ ब्रह्म की सर्वव्यापकता

ज्येष्ठ ब्रह्म के विराट रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भूमि उसका पैर है, अन्तरिक्ष उसका पेट है, द्युलोक उसका सिर है। सूर्य और चन्द्रमा उसकी आँख है। अग्नि उसका मुंह है। वायु उसका श्वास-प्रश्वास (प्राण-अपान) है। अंगिरा ऋषिगण उसके नेत्र हैं। सारी दिशाएं उसके कान हैं –-

यस्य भूमिः प्रमा0 यस्य सूर्यश्चक्षुः।
यस्य वातः प्राणापानौ0 [46]

---

[40] अथर्ववेद 10.8.9
[41] अथर्ववेद 10.8.32
[42] अथर्ववेद 10.8.16
[43] अथर्ववेद 10.8.17
[44] अथर्ववेद 10.8.27
[45] अथर्ववेद 10.8.31
[46] अथर्ववेद 10.8.32-33

उस ज्येष्ठ ब्रह्म ने ही धुलोक और भूमि को स्थिर किया है। सारे प्राण धारण करने वाले और देखने वाले जीव उस ज्येष्ठ ब्रह्म में ही विद्यमान हैं। वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों कालों का वह स्वामी है। वह केवल प्रकाशमय है-

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥[47]

4.5.4 ज्येष्ठ ब्रह्म सूत्रात्मा के रूप में

ब्रह्म संसार में संघटक तत्त्व (मिलाने वाला) के रूप में सर्वत्र विद्यमान है। उसमें सारा संसार माला में फूल की तरह पिरोया हुआ है। वह माला के धागे के तुल्य है। जो इस सूत्रात्मा को समझ लेता है, वह ब्रह्म को जान पाता है -

यो विद्यात्सूत्रं विततं यस्मिन् ओताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्याद्स विद्याद्ब्राह्मणं महत्॥[48]

4.5.5 ज्येष्ठ ब्रह्म में सारी सृष्टि

अथर्ववेद का कथन है कि सारी सृष्टि, जो गतिशील है और प्राणयुक्त है, ज्येष्ठ ब्रह्म में प्रतिष्ठित है। एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि जो गतिशील है, जो स्थिर है, जो प्राणयुक्त है, जो प्राणरहित है, जो निमेष-उन्मेष (आँख खोलना-बन्द करना) करता है, वे सब समष्टि रूप होकर उस ज्येष्ठ ब्रह्म में एक हो जाते हैं-

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन् निमिषच्च यद्भुवत्।
तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत्संभूय भवत्येकमेव ॥[49]

सारे देवता और मनुष्य उस ज्येष्ठ ब्रह्म से इसी प्रकार बंधे हुए हैं, जैसे किसी चक्र के मध्य स्थान (नाभि अथवा केन्द्र) में अरे (Spokes) लगे होते हैं -
यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः।[50]

4.5.6 ज्येष्ठ ब्रह्म की साधना

अथर्ववेद में ज्येष्ठ ब्रह्म की साधना का वर्णण है। ज्येष्ठ ब्रह्म सूक्त में कैसे ज्येष्ठ ब्रह्म को प्राप्त किया जाए? उस विधि एवं साधनों का विवेचन किया गया है। संक्षेप में उस विधि एवं साधनों का वर्णन अधोलिखितानुसार है –

4.5.6.1 ज्येष्ठ ब्रह्म का स्थान

सूक्त के अनुसार ब्रह्म 9 द्वार (2 आँख, 2 नाक, 2 कान, मुंह, मलेन्द्रिय, मूत्रेन्द्रिय) वाले, सत्त्व रजस् और तमस् इन गुणों वाले हृदय-कमल में एक चेतन तत्त्व के रूप में विद्यमान है। ब्रह्मवेत्ता ही उसे जान पाते हैं। हृदय-कमल में विद्यमान इस ब्रह्म को ध्यान-साधना से जाना और देखा जा सकता –

---

[47] अथर्ववेद 10.8.1

[48] अथर्ववेद 10.8.37

[49] अथर्ववेद 10.8.11

[50] अथर्ववेद 10.8.34

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥[51]

4.5.6.2 ब्रह्मवेत्ता का स्वरूप

ज्येष्ठ ब्रह्म का ज्ञान कर लेने के पश्चात् ब्रह्मवेत्ता कैसा होता है? इस विषय में सूक्त कहता है कि अकाम धैर्यवान् अमर तथा स्वयंभू ब्रह्म अपने ही रस से तृप्त रहता है। वह किसी भी विषय में न्यून नहीं है। उस धैर्यवान्, अजर तथा नित्य युवा आत्मा को जानने वाले मनुष्य मृत्यु से भयभीत नहीं होते –

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥[52]

4.5.6.3 मन पर नियन्त्रण

ब्रह्म सूक्ष्म तत्त्व है। वह सारे संसार की गति-विधि का नियन्ता है। उसका ज्ञान हमें चर्म चक्षुओं से नहीं हो सकता। सूक्त में एक उदाहरण भी दिया कि कोई घडा छत पर जल से भरा हुआ रखा है। जल से भरे हुए घड़े को तो सब देखते है परन्तु घड़े को जल से भरकर लाने वाले धारणकर्ता व्यक्ति को कोई नहीं देखता उसी प्रकार संसार की गतिविधियों को सब सदा देखते हैं, परन्तु संसार के मूल ब्रह्म का ज्ञान हमें चर्म चक्षुओं से नहीं हो सकता। अतः उसे मन से देखना पडेगा परन्तु मन का नियन्त्रण न होने से उसे नहीं जान पाते हैं। मन का निग्रह होने पर उसका साक्षात्कार हृदय में होता है -

ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम्।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥[53]

4.5.6.4 सत्य, ज्ञान एवं प्राण

ज्येष्ठ ब्रह्म सूक्त में ज्येष्ठ ब्रह्म की साधना में सत्य ज्ञान एवं प्राण को महत्त्व दिया गया है। प्राण पर नियन्त्रण होने के बाद ही मन सत्य एवं ज्ञान के योग्य हो पाता है। सूक्त में कहा गया है कि ज्येष्ठ ब्रह्म उस व्यक्ति का वरण करता है जो सत्य की प्रेरणा ऊपर अर्थात् परमात्मा से लेता है, ज्ञानपूर्वक व्यवहार नीचे से अर्थात् जगत् से करता है तथा जो दोनों से सम्पर्क बनाए रख कर प्राणयुक्त अर्थात् जीवन्त बना रहता है –

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ्‌वि पश्यति।
प्राणेन तिर्यङ्‌प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् ॥[54]

4.5.6.5 ध्यान

ज्येष्ठ ब्रह्म की साधना में ध्यान भी एक मुख्य साधन है। ब्रह्म मनुष्य के मन-मन्दिर में रमा हुआ है, यदि मनुष्य अपने मन को अन्दर की ओर मोड़ लेता है और अन्तर्दृष्टि विकसित करता है तो उसे ब्रह्म की प्राप्ति सरलता से हो सकती है -

[51] अथर्ववेद 10.8.43
[52] अथर्ववेद 10.8.44

[53] अथर्ववेद 10.8.14
[54] अथर्ववेद 10.8.19

एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥[55]

4.6 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने अथर्ववेद में सृष्टि के मूल कारण पर चर्चा करने वाले चार सूक्तों का अध्ययन किया– काल सूक्त (19.53), उच्छिष्ट सूक्त (11.9), स्कम्भ सूक्त (10.7) एवं ज्येष्ठ ब्रह्म सूक्त (10.8)। अथर्ववेद के 19 वें काण्ड के 53 वें सूक्त के 14 मन्त्रों में समस्त जगत् के कारणभूत काल रूप परमात्मा से ही पृथ्वी की उत्पत्ति तथा भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान को उसी पर आश्रित बताया गया है। अथर्ववेद के 11 वें काण्ड के 09 वें सूक्त के 27 मन्त्रों में उच्छिष्ट ब्रह्म का वर्णन है। उच्छिष्ट ब्रह्म अर्थात् उत् + शिष्ट, बचा हुआ, शेष पदार्थ। परमात्म सत्ता ने अपने अव्यक्त गुणातीत स्वरूप में से जो अंश शेष है वही उच्छिष्ट ब्रह्म है जिससे नामरूपात्मक सृष्टि बनी हुई है। अथर्ववेद के 10 वे काण्ड के 07 वें सूक्त में में ब्रह्म को स्कम्भ और सर्वाधार बताया गया है। स्कम्भ का अर्थ है- आधार, आश्रय, रोककर रखने रखने वाला। संसार को रोककर रखने वाली कोई एक सत्ता है, वह है ब्रह्म। सबका आधार होने के कारण उसे स्कम्भ ब्रह्म या सर्वाधार ब्रह्म कहते हैं। अथर्ववेद 10 वें काण्ड के 08 वें सूक्त में ज्येष्ठ ब्रह्म का ही वर्णन है। ज्येष्ठ का अर्थ है- सबसे बड़ा। यहाँ अभिप्राय है- सबसे बड़ी सत्ता या शक्ति। ब्रह्म संसार में सबसे बड़ी शक्ति है। वह संसार का कर्ता, धर्ता और संहर्ता है। इस इकाई में हम सृष्टि के मूल कारण के रूप में अथर्ववेद के काल (19.53), उच्छिष्ट (11.9), स्कम्भ (10.7) एवं ज्येष्ठ ब्रह्म (10.8) के प्रतिपाद्य एवं दार्शनिकता का अध्ययन किया।

4.7 शब्दावली

1. **वेद** - वेद शब्द ज्ञानार्थक 'विद्' धातु (विद ज्ञाने) से 'घञ् (अ) प्रत्यय करने पर बनता है, इसका अर्थ है ज्ञान। अतः 'वेद' शब्द का अर्थ होता है ज्ञान की राशि या ज्ञान का संग्रह ग्रन्थ।
2. **अथर्व** - अथर्व शब्द का निर्वचन निरुक्त [निरुक्त — 11.2.17] तथा गोपथ ब्राह्मांण में किया गया है कि ''थर्व धातु, जिसका अर्थ कौटिल्य अथवा हिंसा है, में नञ् समास करके 'अथर्व' शब्द की सिद्धि हुई है।'' इस प्रकार अथर्व का अर्थ है— ''जिसमें तनिक भी हिंसा न हो।''
3. **ब्रह्म -** ब्रह्म , क्ली, (बृंहति बर्द्धते निरतिशयमहत्त्व- लक्षणबृद्धिमान् भवतीत्यर्थः। बृहिबृद्धौ + बृंहे-
4. र्नोऽच्च।" उणा0 4। 145। मनिन् नकार- स्याकारः। बृह् धातु +मनिन् प्रत्यय से ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति हुई जिसका अर्थ है जो व्यापक है वह ब्रह्म है। सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का कारण ब्रह्म है।
5. **काल** - कल् धातु + अच् प्रत्यय। इसके दो अर्थ हैं - कलयति आयुः कल् संख्याने पचाद्यच्। कालयति सर्वाणि भूतानि कल् प्रेरणे पचाद्यच्। अर्थात् जिससे आयु का मापन किया जाए अथवा जिससे समस्त पदार्थ उत्पन्न एवं विलीन होते है वह काल कहलाता है।

[55] अथर्ववेद 10.8.28

6. **उच्छिष्ट -** उच्छिष्ट का अर्थ है - उत् + शिष्ट, बचा हुआ, शेष पदार्थ, जो भोजन आदि कार्य के बाद बचा रहता है। परमात्म सत्ता ने अपने अव्यक्त गुणातीत स्वरूप में से जो अंश शेष है वही उच्छिष्ट ब्रह्म है जिससे नामरूपात्मक सृष्टि बनी हुई है।
7. **स्कम्भ -** स्कम्भ का अर्थ है- आधार, आश्रय, रोककर रखने रखने वाला। संसार को रोककर रखने वाली कोई एक सत्ता है, वह है ब्रह्म। सबका आधार होने के कारण उसे स्कम्भ ब्रह्म या सर्वाधार ब्रह्म कहते हैं।
8. **ज्येष्ठ -** ज्येष्ठ का अर्थ है- सबसे बड़ा। यहाँ अभिप्राय है- सबसे बड़ी सत्ता या शक्ति। ब्रह्म संसार में सबसे बड़ी शक्ति है। वह संसार का कर्ता, धर्ता और संहर्ता है।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जिला वलसाड, 2011.
- त्रिवेदी, क्षेमकरणदास, अथर्ववेद (द्वितीय खण्ड हिन्दी भाष्य) , विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली 2017
- शर्मा, रामस्वरूप, अथर्ववेद (सायण भाष्य सहित), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2011.
- Joshi, K.L.Atharva Veda Samhita (With Bhashya Of Sayanacharya), Parimal Publication, Delhi, 2015.

4.9 बोध प्रश्न

1. काल सूक्त के आधार पर काल ब्रह्म की सर्वव्यापकता एवं सर्जनात्मकता की समीक्षा किजिए?
2. स्कम्भ सूक्त के आधार पर स्कम्भ ब्रह्म के समग्र जगत् के सर्वाधारत्व की विवेचना किजिए?
3. “दृश्यमान जगत् ब्रह्म के उच्छिष्ट अंश से बना है” इस पंक्ति की व्याख्या उच्छिष्ट ब्रह्म के आधार पर किजिए?
4. ज्येष्ठ ब्रह्म इस संसार का कर्ता, धर्ता और संहर्ता कैसे है? समझाइए?

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY